

[2012] 5 एससीआर 599

जनरल ऑफिसर कमांडिंग

बनाम

सीबीआई और अन्य।

(आपराधिक अपील संख्या 257/2011)

1 मई 2012

[माननीय न्यायमूर्ति डॉ. बी.एस. चौहान और माननीय न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार]

सशस्त्र बल जम्मू और कश्मीर (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1990: धारा 4,6-
सशस्त्र बलों के अधिकारियों को प्रदान की गई शक्तियों का दायरा।

धारा 7 - की व्याख्या - अभिनिर्धारित: अधिनियम की योजना सेना के जवानों को अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी भी काम को किये जाने या किया गया प्रतीत होने वाले के सम्बन्ध में सुरक्षा प्रदान करती है। - धारा 7 केंद्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना सेना के किसी भी जवान के खिलाफ कानूनी कार्यवाही करने पर रोक लगाता है - धारा 7 में रखे शब्द 'संस्थित' करने का तात्पर्य अपराध का संज्ञान लेना है और अनुसंधानक द्वारा केवल आरोप पत्र समर्पित करना नहीं है इसलिए, केंद्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना सेना के जवानों के खिलाफ आरोप पत्र दायर नहीं किया जा सकता है - यह सुरक्षा है सेना के जवानों द्वारा किए गए कथित कृत्य के बारे में तभी उपलब्ध होगा जब उचित रूप से अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के साथ जुड़ा हुआ है और केवल आपत्तिजनक कृत्य करने के लिए लबादा नहीं है संविधि के तहत जांच करने के लिए प्रश्न की क्या मंजूरी आवश्यक है या नहीं, अपराध का संज्ञान लेते समय विचार किया जाना चाहिए न कि जांच या अनुसंधान के दौरान - विधायिका वैधानिक प्राधिकरण को "पूर्ण शक्ति" प्रदान की है , स्वीकृति देने की या उसे रोकने की और अदालत की इस विषय में कोई भूमिका नहीं है - ऐसे में स्थिति यह है कि न्यायालय सक्षम सांविधिक प्राधिकारी की मंजूरी के बिना आगे नहीं बढ़ेगा -दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 - धारा 197 - सामान्य खंड अधिनियम, 1897 -सेना अधिनियम, 1950। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973: एक वाद संस्थित होना - का तात्पर्य - अभिनिर्धारित :लागू अधिनियम/संविधि की योजना पर विचार करते हुए शब्द "संस्थित" का निर्धारण होना है - जहां तक आपराधिक कार्यवाही की बात है,

“संस्थित” का तात्पर्य दाखिल करना,

प्रस्तुत करना या कार्यवाही प्रारम्भ करना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ सीआरपीसी में विहित प्रावधानों के अनुसार संज्ञान लेना है।

सामान्य खंड अधिनियम, 1897: धारा 3(22) - सद्भावना -

अभिनिर्धारित: एक लोक सेवक का नैतिक और कानूनी दायित्व है कि वह अपने कर्तव्य को सच्चाई, ईमानदारी, सम्मान, निष्ठा आदि के साथ निभाए। उसे अधिकारी की अपेक्षा और पद की प्रकृति के अनुसार अपना कर्तव्य निभाना है कारण यह है कि उसे सौंपे गए कर्तव्य को पूरा करने के लिए उसे कानून और अधिकार का सम्मानपूर्वक पालन करना है सद्भावना को धारा 3(22) में परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ है एक कार्य जो वास्तव में ईमानदारी से किया गया हो, चाहे यह असावधानी से किया गया हो या नहीं - कोई भी चीज उचित सावधानी और ध्यान से की गयी, को सद्भावना में किया हुआ माना जायेगा, जो दुर्भावना पूर्ण न हो - सद्भावना और सार्वजनिक भलाई हालांकि तथ्य के प्रश्न हैं, लेकिन साक्ष्य देकर साबित किए जाने की आवश्यकता है।

सेना अधिनियम, 1950: धारा 125 - विकल्प का प्रयोग -

अभिनिर्धारित: किसी अभियुक्त का विचारण कोर्ट मार्शल द्वारा होगा और न कि आपराधिक न्यायालय द्वारा, ऐसा विकल्प लेने का चरण आरोप पत्र दाखिल होने के पश्चात और संज्ञान लेने या आरोप विरचित होने के पहले होता है - यदि सेना चाहे तो वह आपराधिक अदालत से गुजरने के बजाय आरोपी पर कोर्ट मार्शल के माध्यम से मुकदमा चला सकती है - एक बार विकल्प बन जाने के बाद कि अभियुक्त का विचारण कोर्ट मार्शल द्वारा किया जाना है, तो आगे की कार्यवाही सेना अधिनियम की धारा 70 के उपबंधों के अनुसार होगी और इस प्रयोजन के लिए केन्द्र सरकार की मंजूरी अपेक्षित नहीं है। शब्द और वाक्यांश:

‘संज्ञान’, ‘अभियोजन’, ‘वाद’, ‘कानूनी कार्यवाहियां’, और अभिव्यक्ति ‘मामले का संस्थित होना’ - का अर्थ: ‘अपवाद’, ‘तात्पर्य’, ‘सद्भावना’ - का अर्थ।

“कानूनी कार्यवाही” और “न्यायिक कार्यवाही” - के बीच अंतर।

अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि फर्जी मुठभेड़ों में सेना के अधिकारियों द्वारा कुछ नागरिकों को मार दिया गया था। सीबीआई को अनुसंधान करने के लिए कहा गया था। सीबीआई ने अनुसंधान किया और सेना के अधिकारियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल की। मजिस्ट्रेट ने सेना को इस विकल्प का प्रयोग करने का अवसर दिया कि क्या सक्षम प्राधिकारी सेना अधिनियम, 1950 की धारा 125 के प्रावधानों के तहत मामले को अपने हाथ में लेकर कोर्ट मार्शल के माध्यम से मामले की सुनवाई करना पसंद करेगा। सेना के अधिकारियों ने मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन दायर किया कि कोई अभियोजन सशस्त्र बलों जम्मू और कश्मीर (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1990 की धारा 7 के प्रावधानों

को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी को छोड़कर स्थापित नहीं किया जा सकता है और, इसलिए, सीबीआई को आरोप पत्र लौटा कर कार्यवाही को बंद कर दिया जाए। मजिस्ट्रेट द्वारा आवेदन को खारिज करते हुए कहा गया कि यह निचली अदालत को पता लगाना है कि क्या शिकायत की गई कार्रवाई आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के दायरे में आती है या नहीं। सत्र न्यायालय ने पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। हालांकि, इसने मजिस्ट्रेट को सेना के अधिकारियों को सेना अधिनियम की धारा 125 के तहत विकल्प का प्रयोग करने के लिए एक और मौका देने का निर्देश दिया। उच्च न्यायालय ने निचली अदालतों के फैसलों की पुष्टि की और माना कि मंजूरी का उद्देश्य सेना के अधिकारियों को अपना कार्य निडर होकर करने में सक्षम बनाना है, अपने कर्तव्यों के पालन में किए गए कार्य के लिए कष्टप्रद दुर्भावनापूर्ण और झूठा अभियोजन से बचाना है। तत्काल अपील में, यह तर्क दिया गया था कि अधिनियम, 1990 की धारा 7 में यह प्रावधान है कि अधिनियम के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किए गए या किए जाने वाले किसी भी कार्य के संबंध में किसी व्यक्ति के विरुद्ध केन्द्र सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई अभियोजन, वाद अथवा विधिक कार्यवाही शुरू नहीं की जाएगी; यह माना जाएगा कि जिस समय आरोप पत्र दायर किया गया है और न्यायालय द्वारा प्राप्त किया गया है, उस समय अभियोजन की स्थापना/शुरुआत की गई है, और ऐसी स्वीकृति/प्राप्ति अधिकार क्षेत्र से बाहर है; और यह कि सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति न्यायालय के लिए एक पूर्व शर्त है आरोप-पत्र को रिकॉर्ड पर लेने के लिए।

यदि कथित अपराध सरकारी कर्तव्य के निर्वहन में प्रतिबद्ध किया गया है और ऐसा मुद्दा न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को छूता है।

अपीलों का निस्तारण करते हुए, न्यायालय

अभिनिर्धारित: 1.1. सशस्त्र बल जम्मू और कश्मीर (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1990 जम्मू-कश्मीर राज्य के अशांत क्षेत्र में सशस्त्र बलों के सदस्यों को विशेष शक्तियां प्रदान करता है। अशांत क्षेत्र को परिभाषित किया गया है और इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि जिस स्थान पर घटना हुई थी वह अधिनियम 1990 के तहत अधिसूचित था अधिनियम 1990 की धारा 4 सशस्त्र बलों के अधिकारी को सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए उपाय करने के लिए विशेष शक्तियां प्रदान करती है, जहां वह ऐसा करना आवश्यक समझता है। हालांकि, उसे परिस्थितियों के अनुसार उचित चेतावनी देनी चाहिए और यहां तक कि अशांत क्षेत्र में कानून और व्यवस्था का उल्लंघन करने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ मौत का कारण बनने वाले बल का उपयोग करने या बल

का उपयोग करने के लिए भी गोली चलाना या बल का उपयोग करना और पांच या अधिक व्यक्तियों के एकत्र होने या हथियार आदि ले जाने पर रोक लगाना। ऐसा अधिकारी आगे भी किसी भी हथियार के ढेर को नष्ट करने, बिना वारंट के किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और किसी भी गिरफ्तारी के लिए किसी भी परिसर में प्रवेश करने और तलाशी लेने का अधिकार दिया गया है। अधिनियम 1990 की धारा 6 के अनुसार ऐसे गिरफ्तार व्यक्ति और जब्त की गई संपत्ति ऐसे अधिकारी द्वारा स्थानीय पुलिस को सौंप दिया जाए।

A [पैरा 9] [627-एच; 628-ए-डी]

1.2. अधिनियम 1990 की धारा 7 किसी भी चीज के संबंध में सेना के कर्मियों को व्यापक सुरक्षा प्रदान करती है जो अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में किया गया या किया जाना प्रतीत होता हो अधिनियम की योजना में यह आवश्यक है कि अधिनियम, 1990 के तहत काम करने वाले किसी भी सैन्य अधिकारी के खिलाफ शुरू किए गए किसी भी अभियोजन, वाद या कानूनी कार्यवाही को कार्यवाही शुरू होने से पहले कड़ी परीक्षा किया जाना चाहिए। धारा 7 की व्याख्या उक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए करने की आवश्यकता है। 'अभियोजन' का अर्थ है किसी अपराध के आरोप में आरोपी व्यक्ति का 'अपराध' या 'निर्दोषता' का निर्धारण करने के उद्देश्य से कानून की अदालत के समक्ष एक आपराधिक कार्रवाई। दीवानी मुकदमा कानून द्वारा किसी पक्ष में निहित अधिकार की प्राप्ति के लिए कानून की अदालत के समक्ष स्थापित एक नागरिक कार्रवाई को संदर्भित करता है। वाक्यांश 'कानूनी कार्यवाही' का अर्थ है न्याय की अदालत में कार्यवाही एक उपाय प्राप्त करने के लिए जो कानून पीड़ित व्यक्ति को अनुमति देता है। इसमें कोई भी औपचारिक कदम या उपाय शामिल हैं। यह 'न्यायिक कार्यवाही' का पर्याय नहीं है। हर न्यायिक कार्यवाही एक कानूनी कार्यवाही है, लेकिन इसके विपरीत नहीं, इसका कारण यह है कि एक 'कानूनी कार्यवाही' हो सकती है जो बिल्कुल भी न्यायिक नहीं हो सकती है, उदाहरण के लिए आयकर अधिनियम, बिक्री कर अधिनियम, मध्यस्थता कार्यवाही आदि के तहत मूल्यांकन जैसे वैधानिक उपाय। इस लिए, अभिव्यक्ति 'कानूनी कार्यवाही' का दायरा 'न्यायिक कार्यवाही' की तुलना में बहुत व्यापक है। अभिव्यक्ति 'कानूनी कार्यवाही' इसे इसके सामान्य अर्थ में समझा जाना चाहिए लेकिन यह विभागीय और प्रशासनिक कार्यवाही से काफी अलग है। धारा 7 में प्रयुक्त शब्द अर्थात् मुकदमा, अभियोजन और कानूनी कार्यवाही अंतर-परिवर्तनीय या एक ही अर्थ व्यक्त करने वाले नहीं हैं। 'कानूनी कार्यवाही' वाक्यांश को किसी

विशेष मामले में लागू वैधानिक प्रावधान के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, और उसमें प्रयुक्त पूर्ववर्ती शब्दों को ध्यान में रखते हुए। कानूनी कार्यवाही का अर्थ है कानून द्वारा विनियमित या निर्धारित जिसमें एक न्यायिक निर्णय दिया जा सकता है; इसका अर्थ है न्याय की अदालत में कार्यवाही जिसके द्वारा एक पक्ष एक उपाय का माँग करता है जो एक कानून प्रदान करता है, लेकिन इसमें प्रशासनिक और विभागीय कार्यवाही शामिल नहीं है। अधिनियम, 1990 की धारा 7 का प्रावधान केंद्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना किसी भी सैन्य कर्मों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही करने पर रोक लगाता है। इसलिए, केंद्र सरकार की पूर्वअनुमति के बिना आरोप पत्र दायर नहीं किया जा सकता है। 'कुछ भी किया' या 'कथित रूप से किया गया' शब्दों का उपयोग अधिनियम, 1990 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किए गए कार्य अपने क्षेत्र और दायरे में बहुत व्यापक हैं और इसमें दोहरे परीक्षण शामिल हैं। सबसे पहले, जिस कार्य या चूक की शिकायत की गई है, वह अधिनियम के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के दौरान किया गया होगा अर्थात्, अपनी सेवा के दौरान कर्तव्य का पालन करते समय और दूसरा, एक बार जब यह पाया जाता है कि वह अपने सरकारी कर्तव्य का निर्वहन करते हुए किया गया है, तो धारा 7 के तहत दी गई सुरक्षा को उदारतापूर्वक समझा जाना चाहिए। इसलिए, अधिनियम 1990 की धारा 7 के तहत निहित प्रावधान अभियोजन शुरू करने के अधिकार क्षेत्र के मुद्दे को छूता है।

[पैरा 10, 11,12] [628-डी-ई; 629-बी-एच; 630-ए; 631-ए-ई]

केंद्रीय उत्पाद शुल्क के सहायक कलेक्टर, गुंटूर बनाम रामदेव टोबैको कंपनी, एआईआर 1991 एससी 506; महाराष्ट्र ट्यूब्स लिमिटेड बनाम राज्य औद्योगिक और महाराष्ट्र निवेश निगम लिमिटेड एवं अन्य।(1993) 2 एस सी सी 144: 1993 (1) एससीआर 340; एस.वी. कौंडास्कर, आधिकारिक परिसमापक बनाम वी. एम. देशपांडे, आई.टी.ओ. और अन्य। एआईआर 1972 एससी 878: 1972 (2) एससीआर 965; बाबूलाल बनाम मेसर्स हजारी लाल किशोरी लाल एवं अन्य। एआईआर 1982 एससी 818: 1982 (3) एससीआर 94; बिनोद मिल्स कम्पनी लिमिटेड, उज्जैन बनाम श्री। सुरेश चन्द्र महावीर प्रसाद मंत्री, बॉम्बे एआईआर 1987 एससी1739: 1987 (3) एससीआर 247 - पर भरोसा किया।

2. एक मामले का संस्थित होना: संस्थित होना शब्द का अर्थ लागू

अधिनियम/कानून की योजना को ध्यान में रखते हुए पता लगाना चाहिए ।

अभिव्यक्ति हो सकता है का अर्थ दाखिल करना/प्रस्तुति या न्यायालय द्वारा

प्राप्त या लिया गया है।केवल शिकायत प्रस्तुत करने का मतलब यह नहीं माना जा सकता है कि मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया है। इस प्रकार,अभिव्यक्ति "संस्थित" को किसी विशेष मामले में लागू अधिनियम की योजना के संदर्भ में समझना है। जहां तक आपराधिक कार्यवाही का संबंध है, "संस्थित" का अर्थ दाखिल करना, प्रस्तुत करना या कार्यवाही शुरू करना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है सीआरपीसी में निहित प्रावधानों के अनुसार संज्ञान लेना ।

[पैरा 13, 20,21) [631-एफ; 634-8-डी]

मेसर्स लक्ष्मीरतन इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड बनाम लक्ष्मीरतन इंजीनियरिंग वर्क्स लि। सहायक। आयुक्त (न्यायिक) I, बिक्री कर, कानपुर रेंज, कानपुर और अन्य। एआईआर 1968 एससी 488; लाला राम बनाम हरि राम, एआईआर 1970 एससी 1093 हिंदुस्तान कमर्शियल बैंक लिमिटेड बनाम पुन्नू साहू (मृत) एलआर के माध्यम से। एआईआर 1970 एससी 1384; मार्टिन एंड हैरिस लिमिटेड बनाम छठा अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और अन्य। एआईआर 1998 एससी 492; जमुना सिंह और अन्य। बनाम . भदई शाह एआईआर 1964 एससी 1541 सत्यवीर सिंह राठी एसीपी और अन्य। बनाम सीबीआई के माध्यम से राज्य (2011) 6 एससीसी 1: 2011 (6) एससीआर 138; कमलापति त्रिवेदी बनाम . राज्य पश्चिम बंगाल एआईआर 1979 एससी 777 1979 (2) एससीआर 717; देवरापल्ली लक्ष्मीनारायण रेड्डी और अन्य। बनाम वी.नारायण रेड्डी और अन्य। एआईआर 1976 एससी 1672: 1976 (0) पूरक एससीआर 524; नरसिंह दास तापड़िया बनाम गोवर्धन दास पार्टनी और अन्य। एआईआर 2000 एससी 2946: 2000 (3) पूरक एससीआर 171 - पर भरोसा किया गया।

3.अभियोजन के लिए मंजूरी: 3.1 सीआरपीसी की धारा 197 के तहत दिया गया संरक्षण जिम्मेदार लोक सेवकों को लोक सेवक के रूप में कार्य करते समय या कार्य करने का इरादा रखते हुए उनके द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध के लिए संभावित रूप से कष्टप्रद आपराधिक कार्यवाही संस्थित होने के खिलाफ रक्षा करना है,विधायिका की नीति लोक सेवकों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने की है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में उनके द्वारा किए गए किसी भी काम के लिए उन पर उचित कारण के बिना मुकदमा नहीं चलाया जाए और यदि मंजूरी दी जाती है, तो सरकार को प्रदान करने के लिए, यदि वे इसे लागू करना चुनते हैं, तो अभियोजन का पूर्ण नियंत्रण प्रदान करें। इस सुरक्षा की कुछ सीमाएं हैं और यह केवल तभी उपलब्ध होती है जब लोक सेवक द्वारा किए गए कथित कृत्य अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से यथोचित रूप से जुड़ा हुआ है और केवल आपत्तिजनक कार्य करने का लबादा नहीं है। "आधिकारिक कर्तव्य" अभिव्यक्ति का अर्थ है कि कार्य या चूक लोक सेवक द्वारा अपनी सेवा के दौरान की गई होगी और यह अपने कर्तव्य के निर्वहन में किया जाना चाहिए था। यह धारा किसी लोक सेवक द्वारा सेवा में किए गए प्रत्येक कार्य या चूक के लिए उसका सुरक्षा कवच नहीं बढ़ाती है, बल्कि इसके संचालन के दायरे को

केवल उन कृत्यों या चूकों तक सीमित करती है जो लोक सेवक द्वारा आधिकारिक कर्तव्य का निर्वहन में किए जाते हैं। इसलिए, यदि तथ्यों के आधार पर, यह प्रथम दृष्टया पाया जाता है कि वह कार्य या चूक जिसके लिए आरोपी पर आरोप लगाया गया था कि उसका अपने कर्तव्य के निर्वहन के साथ उचित संबंध था, तो इसे आधिकारिक माना जाना चाहिए जिस पर सीआरपीसी की धारा 197 की प्रयोज्यता विवादित नहीं हो सकती है। इस बात की जांच करने के लिए कि किसी कानून के तहत मंजूरी की आवश्यकता है या नहीं, इस प्रश्न पर अपराध का संज्ञान लेते समय विचार किया जाना चाहिए, न कि जांच या अनुसंधान के दौरान। अनुसंधान और अभियोजन के चरण में एक उल्लेखनीय अंतर है। अभियोजन तब शुरू होता है जब अपराध का संज्ञान लिया जाता है। संज्ञान अपराध का लिया जाता है न कि अपराधी का। लोक सेवक को अनावश्यक उत्पीड़न या अभियोजन से बचाने के लिए उपयुक्त प्राधिकारी की मंजूरी आवश्यक है। इस तरह की सुरक्षा एक आश्वासन के रूप में आवश्यक है ताकि सच्चा और ईमानदार अधिकारी ईमानदारी से और अपनी क्षमता के अनुसार अपने सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करें। अभियोजन का खतरा ईमानदार अधिकारी का मनोबल गिराता है। हालांकि, कर्तव्य के रंग के तहत सार्वजनिक कर्तव्य के प्रदर्शन को अपराध करने के लिए छिपाया नहीं जा सकता है। सार्वजनिक कर्तव्य हो सकता है ऐसे लोक सेवक को अपराध करने का अवसर प्रदान करें और ऐसे मुद्दे की जांच मंजूरी देने वाले प्राधिकरण या न्यायालय द्वारा की जानी अपेक्षित है। यह बहुत संभव है कि आधिकारिक क्षमता सार्वजनिक सेवक को अभिलेख बनाने या सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करने आदि में सक्षम बना सकती है। इस तरह की गतिविधियों को निश्चित रूप से एकीकृत रूप से नहीं जोड़ा जा सकता है या अविभाज्य रूप से किए गए अपराध के साथ परस्पर जुड़ा हुआ है। इस प्रकार, किए गए सभी कार्य एक लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के कथित निर्वहन में निश्चित रूप से मंजूरी की आवश्यकता की सुरक्षात्मक छतरी के तहत नहीं लाया जा सकता है। वास्तव में, स्वीकृति का मुद्दा सर्वोपरि महत्व का प्रश्न बन जाता है जब किसी लोक सेवक पर आरोप लगाया जाता है कि उसने अपने अधिकार से परे काम किया है या उसके कृत्यों की शिकायत की गई है तो कर्तव्य की अवहेलना होती है। ऐसी स्थिति में, यदि अपराध का आरोप लगाया जाता है कार्य करते समय या कार्य करने का इरादा रखते हुए उसके द्वारा किया गया अपने आधिकारिक कर्तव्य का निर्वहन, पूर्व स्वीकृति प्रदान करना अनिवार्य हो जाता है। ऐसा है, इस कारण से कि राज्य की शक्ति का निष्पादन भारत के संविधान के अनुच्छेद 166 के अधीन बनाए गए कार्यपालिका कार्य के नियमों के अनुसार इस निमित्त प्राधिकृत कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा किया जाता है, जहां तक कि ऐसी शक्ति अनुच्छेद 162 के अनुसार प्रयोग किया जाना है। व्यापक और शाब्दिक अर्थ में 'संज्ञान' का अर्थ सीआरपीसी की धारा 190 के तहत किसी अपराध का नोटिस लेना है, 'संज्ञान' उस बिंदु को इंगित करता है जब अदालत पहली बार किसी अपराध का न्यायिक नोटिस लेती है। न्यायालय न केवल शिकायत/ पुलिस रिपोर्ट की सामग्री पर अपना ध्यान केंद्रित करता है, लेकिन उस

तरीके से भी आगे बढ़ता है जैसा कि सीआरपीसी के अध्याय XIV के बाद के प्रावधानों में दर्शाया गया है। [पैरा 22 24-39] [634-ई-एच; 635-ए-बी; डीएच, 636-ए-ई; 646-डी-F]

आर. बालकृष्ण पिल्लई बनाम केरल राज्य/ए और अन्य। एआईआर 1996 एससी 901: 1995 (6) पूरक। एससीआर 236; एस.के. जुत्शी & एएनआर बनाम बिमल देबनाथ & अन्य। एआईआर 2004 एससी 4174; जनहित याचिका केंद्र & अन्य। बनाम भारत संघ & अन्य। एआईआर 2005 एससी 4413: 2005 (4) पूरक। एससीआर 77; राकेश कुमार मिश्रा बनाम. बिहार राज्य और अन्य। एआईआर 2006 एससी 820: 2006 (1) एससीआर 124; अंजनी कुमार बनाम बिहार राज्य और अन्य। एआईआर 2008 एससी 1992: 2008 (6) एससीआर 912; मध्य प्रदेश राज्य बनाम शीतला सहाय और अन्य। (2009) ए धारा 617: 2009 (12) एससीआर 1048; भानुप्रसाद हरिप्रसाद दवे और अन्य. बनाम गुजरात राज्य एआईआर 1968 एससी 1323: 11969 एससीआर 22; हरेराम सत्पथी बनाम टीकाराम अग्रवाल और अन्य। एआईआर 1978 एससी 1568: 1979 (1) एससीआर 349; महाराष्ट्र राज्य बनाम डॉ. बुद्धिकोटा सुब्बाराव (1993) 3 धारा 339: 1993 (2) एससीआर 311; अनिल सरन बनाम बिहार राज्य और अन्य। एआईआर 1996 एससी 204: 1995 (3) पूरक एससीआर 58; शंभू नाथ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। और अन्य। एआईआर 1997 एससी 2102: 1997 (2) एससीआर 1-139; चौधरी परवीन सुल्ताना बनाम पश्चिम बंगाल राज्य अन्य। एआईआर 2009 एससी 1404: 2009 (1) एससीआर 99; पंजाब राज्य और अन्य. बनाम मोहम्मद इकबाल भट्टी (2009) 17 धारा 92: 2009 (11) एससीआर 790; आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एन. वेणुगोपाल और अन्य। एआईआर 1964 एससी 33: 1964 एससीआर 742; महाराष्ट्र राज्य बनाम नरहर राव एआईआर 1966 एससी 1783: 1966 एससीआर 880; महाराष्ट्र राज्य बनाम आत्मा राम और अन्य। एआईआर 1966 एससी 1786; प्रोफेसर सुमेर चंद बनाम भारत संघ और अन्य। (1994) 1 धारा 64: 1993 (2) पूरक एससीआर 123; की स्थिति उड़ीसा और अन्य। बनाम गणेश चंद्र यहूदी एआईआर 2004 एससी 2179: ई 2004 (3) एससीआर 504; पी. अरुलस्वामी बनाम मद्रास राज्य एआईआर 1967 एससी 776: 1967 एससीआर 201; सुरेश कुमार भीकमचंद जैन बनाम पांडे अजय भूषण & अन्य। एआईआर 1998 एससी 1524: 1997 (5) पूरक एससीआर 5i24; माताजोग डोबे वी। H.के भारी एआईआर 1956 एससी 44: 1955 एससीआर 925; शंकरन मोड़त्रा बनाम साधना दास और अन्य। एआईआर 2006 एससी i1599: 2006 (3) एससीआर 305; रिजवान अहमद , जावेद शेख और अन्य बनाम जम्मल पटेल और अन्य। एआईआर 2001 एससी 2198: 2001 (3) एससीआर 766; एस.बी. साहा और अन्य बनाम एम.एस. कोचर एआईआर 1979 एससी 1841: 1980 (1) एससीआर 111; प्रकाश सिंह बादल और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य। एआईआर 2007 एससी 1274: 2006 (10) पूरक एससीआर 197; पी.के. चौधरी बनाम पी.के.कमांडर, 48 बीआरटीएफ(जीआईएफ) (2008) 13 सेकंड 229: 2008 (4) एससीआर 976; नागराज बनाम मैसूर राज्य एआईआर 1964 एससी 269: 1964 एससीआर 671; नगा पीपुल्स मूवमेंट ऑफ ह्यूमन राइट्स बनाम .भारत संघ

एआईआर 1998 एससी 431: 1997 (5) पूरक एससीआर 469; जमीरुद्दीन अंसारी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और बनाम. बिहार राज्य और अन्य। एआईआर 2006 एससी 820: 2006 (1) एससीआर 124; अंजनी कुमार बनाम बिहार राज्य और अन्य। एआईआर 2008 एससी 1992: 2008 (6) एससीआर 912; मध्य प्रदेश राज्य बनाम शीतला सहाय और अन्य। (2009) ए धारा 617: 2009 (12) एससीआर 1048; भानुप्रसाद हरिप्रसाद दवे और अन्य. बनाम गुजरात राज्य एआईआर 1968 एससी 1323: 11969 एससीआर 22; हरेराम सत्पथी बनाम टीकाराम अग्रवाल और अन्य। एआईआर 1978 एससी 1568: 1979 (1) एससीआर 349; महाराष्ट्र राज्य बनाम डॉ. बुद्धिकोटा सुब्बाराव (1993) 3 धारा 339: 1993 (2) एससीआर 311; अनिल सरन बनाम बिहार राज्य और अन्य। एआईआर 1996 एससी 204: 1995 (3) पूरक एससीआर 58; शंभू नाथ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। और अन्य। एआईआर 1997 एससी 2102: 1997 (2) एससीआर 1-139; चौधरी परवीन सुल्ताना बनाम पश्चिम बंगाल राज्य अन्य। एआईआर 2009 एससी 1404: 2009 (1) एससीआर 99; पंजाब राज्य और अन्य. बनाम मोहम्मद इकबाल भट्टी (2009) 17 धारा 92: 2009 (11) एससीआर 790; आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एन. वेणुगोपाल और अन्य। एआईआर 1964 एससी 33: 1964 एससीआर 742; महाराष्ट्र राज्य बनाम नरहर राव एआईआर 1966 एससी 1783: 1966 एससीआर 880; महाराष्ट्र राज्य बनाम आत्मा राम और अन्य। एआईआर 1966 एससी 1786; प्रोफेसर सुमेर चंद बनाम भारत संघ और अन्य। (1994) 1 धारा 64: 1993 (2) पूरक एससीआर 123; स्थिति उड़ीसा और अन्य। बनाम गणेश चंद्र यहूदी एआईआर 2004 एससी 2179: ई 2004 (3) एससीआर 504; पी. अरुलस्वामी बनाम मद्रास राज्य एआईआर 1967 एससी 776: 1967 एससीआर 201; सुरेश कुमार भीकमचंद जैन बनाम पांडे अजय भूषण & अन्य। एआईआर 1998 एससी 1524: 1997 (5) पूरक एससीआर 5i24; माताजोग डोबे वी। H.के भारी एआईआर 1956 एससी 44: 1955 एससीआर 925; शंकरन मोडत्रा बनाम साधना दास और अन्य। एआईआर 2006 एससी i1599: 2006 (3) एससीआर 305; रिजवान अहमद , जावेद शेख और अन्य बनाम जम्मल पटेल और अन्य। एआईआर 2001 एससी 2198: 2001 (3) एससीआर 766; एस.बी. साहा और अन्य बनाम एम.एस. कोचर एआईआर 1979 एससी 1841: 1980 (1) एससीआर 111; प्रकाश सिंह बादल और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य। एआईआर 2007 एससी 1274: 2006 (10) पूरक एससीआर 197; पी.के. चौधरी बनाम पी.के.कमांडर, 48 बीआरटीएफ (जीआरईएफ) (2008) 13 सेकंड 229: 2008 (4) एससीआर 976; नागराज बनाम मैसूर राज्य एआईआर 1964 एससी 269:1964 एससीआर 671; नगा पीपुल्स मूवमेंट ऑफ ह्यूमन राइट्स बनाम .भारत संघ एआईआर 1998 एससी 431: 1997 (5) पूरक एससीआर एच 469; जमीरुद्दीन अंसारी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य (2009) 6 एसईसी 316: 2009 (7) एससीआर 759; हरपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य (2007) 13 धारा 387: 2007 (12) एससीआर 830; रामभाई नाथभाई गढ़वी और अन्य बनाम गुजरात राज्य एआईआर

1997 एससी 3475: 1997 (3) पूरक एससीआर 356; हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम एम.पी. गुप्ता (2004) 2 धारा 349: 2003 (6) पूरक एससीआर 541; आर.आर. चारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 1951 एससी 207: जन्म 1991 (1) एसईसी 57; डब्ल्यू बी की स्थिति। & अन्य। बनाम मो. खालिद & अन्य। (1995)1 एसईसी 684: 1994 (6) आपूर्ति। एससीआर 16; डॉक्टर। सुब्रमण्यम स्वामी बनाम डॉ. मनमोहन सिंह और अन्य। 2012 अनुसूचित जाति 1185: 2012 (3) एसईसी 64; भूषण कुमार बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (2012) 4 स्केल 191; उत्तर प्रदेश राज्य पारस नाथ सिंह (2009) 6 धारा 372: 2009 (8) एससीआर 85 -पर भरोसा किया।

3.2 अधिनियम, 1990 की धारा 7 शिकायतकर्ता/जांच जेंसी/पीड़ित व्यक्ति पर प्रतिबंध लगाती है केंद्र सरकार की पूर्व स्वीकृति को छोड़कर, अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, अच्छे विश्वास के साथ सेना के जवान द्वारा किया जाने वाला या किया गया प्रतीत होने वाला किसी भी कार्य के संबंध में वाद, अभियोजन आदि दायर करने पर उक्त प्रावधान में निहित तीन अभिव्यक्ति यानी 'सिवाय', 'सद्भावना' और 'तात्पर्य' के स्पष्टीकरण/विस्तार की आवश्यकता है। (i) 'सिवाय': छोड़ने या बाहर निकालने के लिए: बहिष्कृत; छोड़ दें; सहित नहीं सहेजें; जब तक। इस शब्द का अर्थ तब तक भी लगाया गया है। अपवाद - निर्दिष्ट संख्या या विवरण से बाहर करने का कार्य; वह जो छोड़कर या अलग किया गया है विवरण के एक सामान्य नियम में दूसरों से एक व्यक्ति, चीज, या मामला जो अलग या शामिल नहीं के रूप में निर्दिष्ट है; एक कार्य सिवाय के, उल्लेख से छोड़ने या विचार से बाहर छोड़ने का। (ii) तात्पर्य: तात्पर्य का अर्थ है, विशेष रूप से जानबूझकर, अस्तित्व की उपस्थिति; या दावे, अक्सर झूठे रूप से। इसका अर्थ है व्यक्त करना, संकेत देना, या बाहरी रूप से दावा करता है, अक्सर झूठा। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ है तरीके या उपस्थिति से दावा करना (एक निश्चित चीज होने के लिए, आदि); दिखाने का इरादा; मतलब करने के लिए; इरादा करना। तात्पर्य का अर्थ 'कथित' भी होता है। 'कथित रूप से' - जब शक्ति दी जाती है एक निश्चित प्रभाव के लिए कुछ 'कथित रूप से' करने के लिए, यह कार्य की वैधता के खिलाफ आपत्तियों को रोकने के लिए प्रतीत होता है जो अन्यथा उठाया जा सकता है। इस प्रकार जब किसी शक्ति के अनुसरण में किए जाने वाले किसी भी 'कथित रूप से' को वैधता दी जाती है, तो इसके तहत की गई कोई चीज वैध हो सकती है हालांकि एक समय में किया गया जब शक्ति वास्तव में प्रयोग करने योग्य नहीं होगी। "कथित रूप से किया जाना" - कार्य की प्रकृति में कुछ ऐसा होना चाहिए जो इसे उसके आधिकारिक चरित्र से जोड़ता है। यहां तक कि अगर कार्य कानून द्वारा उचित या अधिकृत नहीं

है, तब भी वह अपने कर्तव्य का निष्पादन में किया गया माना जायेगा यदि वह गलत दृष्टिकोण पर कार्य करता है। तो इसका मतलब है कि कुछ कमी या गलत है: सब कुछ वैसा नहीं है जैसा कि होना चाहता है।

[पैरा 42, 43] (647-एफ-एच; 648-ए-एच; 64!9-ए-बी]

अज़ीमुन्निसा और अन्य बनाम उप संरक्षक, खाली कराई गई संपत्तियां, जिला देवरिया और अन्य। एआईआर 1961 एससी 365: 1961 एससीआर 91; हाजी सिद्दीक हाजी उमर एवं अन्य। बनाम. भारत संघ एआईआर 1983 एससी 259: 1983 (2) एससीआर 249 - पर भरोसा किया गया। डिकर बनाम एंगरस्टीन, 3 सीएच डी 600 - संदर्भित।

4. सद्भावना:

4.1 एक लोक सेवक का नैतिक और कानूनी दायित्व है कि वह अपने कर्तव्य को सच्चाई, ईमानदारी, सम्मान, निष्ठा और विश्वास आदि के साथ निभाए। उसे अपना कर्तव्य निभाना है कार्यालय की उम्मीद और पद की प्रकृति के अनुसार इस कारण से कि उसे सौंपे गए कर्तव्य को पूरा करने के लिए कानून और अधिकार का सम्मानजनक पालन करना है। सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 3(22) में सद्भावना को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ एक ऐसी चीज है जो ईमानदारी से की जाती है, चाहे वह लापरवाही से किया जाए या नहीं उचित देखभाल और ध्यान के साथ किया गया कुछ भी, जो दुर्भावनापूर्ण नहीं है, माना जाता है कि यह अच्छे विश्वास में किया गया है। व्यक्तिगत दुर्भावना या द्वेष नहीं होना चाहिए, बदनाम करने और बदनाम करने का कोई इरादा नहीं होना चाहिए। हालांकि सद्भावना और सार्वजनिक भलाई तथ्य का प्रश्न है, यह आवश्यक साक्ष्य देकर साबित किया जाना चाहिए। इसलिए, प्रत्येक मामले के तथ्य एक आधिकारिक कार्य के तत्व गठन करने के लिए आवश्यक हैं। कार्य आधिकारिक होना चाहिए और निजी नहीं क्योंकि इसे उस तरीके से अलग किया जाना चाहिए जिस तरह से इसे प्रशासित या निष्पादित किया गया है। फिर इस तरह के कर्तव्य को अच्छे विश्वास तरीके से निभाने का मुद्दा आता है। वह कार्य जो विश्वसनीय प्राधिकार पर आगे बढ़ता है और सच्चाई के रूप में स्वीकार किया जाता है सद्भावना में होना कहा जाता है। यह धोखा देने के इरादे के विपरीत है। अच्छे विश्वास में किया गया एक कर्तव्य एक अधिकारी में व्यक्त किए गए विश्वास को पूरा करना है और जो उच्च प्राधिकारी के प्रति निष्ठा रखता है। ऐसा कर्तव्य इरादे में सद्भावना पूर्ण और उचित होना चाहिए व्यावसायिक निष्पादन में। यह इस तरह के आकलन के आधार पर है कि

एक कार्य को सदभावना में माना जा सकता है, जिसके लिए किसी मामले का निर्णय करते समय अभिलेख पर पूरी सामग्री का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। आम तौर पर जो आरोप लगाए जाते हैं, वे यह हैं कि इस कृत्य का किसी से कोई पता नहीं चल पाया था कर्तव्य का विधिसम्मत निर्वहन। यह अपने आप में यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि कर्तव्य बुरे विश्वास में किया गया था। यही कारण है कि प्रतिरक्षा खंड वैधानिक प्रावधानों में निहित है जो कानून लागू करने वाले अधिकारी को शक्तियां प्रदान करता है। यह उन्हें इस धारणा पर बचाने के लिए है कि अच्छे विश्वास में किए गए कार्य द्वेष या दुर्भावना से स्वतंत्र हैं। प्रतिरक्षा एक प्रकार की स्वतंत्रता है छूट के रूप में प्राधिकरण को प्रदान किया गया आधिकारिक कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन या निर्वहन करते समय इस प्रकार किया गया कार्य या कर्तव्य ऐसे हैं जिनके लिए एक अधिकारी को उसका कार्यालय या पद के कारण से क्षमा किया जाता है। यही कारण है कि मूल्यांकन यदि कोई शिकायत या प्रतिरक्षा के विरुद्ध स्वीकृति प्रदान करने के लिए आवश्यक तथ्यों की जांच की जानी चाहिए यह पता लगाने के लिए कि क्या कार्य कर्तव्यनिष्ठ है और अच्छे विश्वास में और दुर्भावनापूर्ण रूप से प्रेरित नहीं है। अचानक लिया गया निर्णय प्राधिकरण के तहत कुछ करना या ऐसे अधिकार का कथित प्रयोग आवश्यक रूप से उस उद्देश्य को छोड़कर पूर्व निर्धारित नहीं किया जा सकता है जिसे पूरा करने के लिए अधिकारी आगे बढ़ता है। उदाहरण के लिए, छापा मारते समय एक अधिकारी को हमले की आशंका नहीं हो सकती है, लेकिन अपने आधिकारिक कर्तव्य का पालन करते समय अपराधियों और बेईमान व्यक्तियों के हाथ उसे ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है!। अधिकारी अपने बचाव में एक कर्तव्य का पालन कर सकता है जो कुछ गलत गणना या गलत सूचना के कारण हो सकता है लेकिन इस तरह के कर्तव्य को बुरे विश्वास में एक कार्य के रूप में लेबल नहीं किया जा सकता है जब तक कि यह सकारात्मक सामग्री द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जाता है, विशेष रूप से कि कार्य व्यक्तिगत उद्देश्यों से दूषित था और किसी भी आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से जुड़ा नहीं था। इस प्रकार; एक कार्य जो गलत प्रतीत हो सकता है या कोई निर्णय जो गलत प्रतीत हो सकता है, वह नहीं है आवश्यक रूप से एक दुर्भावनापूर्ण कार्य या निर्णय। इसलिए अच्छे विश्वास की धारणा को केवल ठोस और ठोस सामग्री द्वारा ही खारिज किया जा सकता है और जब तक इस तरह का निष्कर्ष नहीं निकाला जाता है, तब तक अच्छे विश्वास में एक कर्तव्य माना जाना चाहिए कि कानून के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किया गया है। वहाँ प्रतिरक्षा खंड को दूर करने के लिए किसी कार्य के पीछे एक अनुचित मकसद को

जिम्मेदार ठहराने या आरोपित करने के लिए सामग्री होनी चाहिए। यही कारण है कि जब प्राधिकरण जिसे अधिकार दिया गया है मंजूरी देने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए आगे बढ़ रहा है, इसे मंजूरी देने का आदेश पारित करने से पहले घटना के भौतिक तथ्यों को ध्यान में रखना होगा अन्यथा आधिकारिक कर्तव्य हमेशा खतरे में होगा, भले ही प्रामाणिक और वास्तविक रूप से किया गया हो।

[पैरा 44-51] [649-ई-एच; 650-ए; 651-बीएच; 652-ए-एच]

माधवराव नारायणराव पटवर्धन बनाम राम कृष्ण गोविंद भानु और अन्य/ एआईआर 1958 एससी 767; 1959 एससीआर 564; माधव राव सिंधिया बहादुर आदि बनाम भारत संघ और अन्य/ एआईआर 1971 एससी 530; 1971 (3) एससीआर 9; सेवाक्रम सोभानी बनाम आर.के. करंजिया, मुख्य संपादक, वीकली ब्लिट्ज और अन्य/ एआईआर 1981 एससी 1514; विजय कुमार रामपाल और अन्य/ 1985 एससी 1669; देवना (मृत) एलआरएस के माध्यम से बनाम भरत सिंह (मृत) एलआर के माध्यम से। और अन्य, (2002) 6 धारा 336; 2002 (1) पूरक एससीआर 289; गुंडाला वेंकटेश्वरलू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य/ (2008) 9 धारा 613; 2008 (12) एससीआर 608; बृजेंद्र सिंह बनाम बृजेंद्र सिंह उत्तर प्रदेश राज्य & अन्य/ एआईआर 1981 एससी 636 -पर भरोसा किया।

4.2 किसी अधिकारी को विशेष रूप से अधिनियम, 1990 या इसी तरह के अधिनियमों के प्रावधानों में दी गई सुरक्षा और प्रतिरक्षा शिकायत किए गए कार्य का आकलन करने के लिए व्यापक रूप से समझा जाना चाहिए। इसमें गलत पहचान या वास्तविक संदेह के आधार पर किए गए कार्य जैसे मामलों की आकलन भी शामिल होगा इसलिए, इस तरह के प्रतिरक्षा खंडों की व्याख्या मंजूरी देने वाले प्राधिकारी को व्यापक विवेकाधीन शक्तियों के साथ की जानी चाहिए अच्छे विश्वास में कर्तव्यों के आधिकारिक निर्वहन को बनाए रखने के लिए और इसलिए एक मंजूरी का आकलन केवल ठोस आधार पर जारी की जानी चाहिए और अन्यथा नहीं। धारा 7 में 'नहीं' और 'करेगा' जैसे शब्दों का प्रयोग अधिनियम 1990 के अंतर्गत केन्द्र सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करने की अनिवार्य आवश्यकता को दर्शाया गया है। अभियोजन, मुकदमा या कानूनी कार्यवाही की स्थापना से पहले धारा 197(2) सीआरपीसी और अधिनियम 1990 की धारा 7 के संयुक्त पठन से पता चलेगा कि उक्त कानूनी कार्यवाही में से किसी की संस्थिति के पहले पूर्व मंजूरी एक शर्त है। दंड प्रक्रिया संहिता और भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम के प्राविधानो

के तहत, सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति के बिना न्यायालय को संज्ञान लेने से रोका गया है। अधिनियम 1990 के तहत, अनुसंधान एजेंसी/शिकायतकर्ता/पीड़ित व्यक्ति को आपराधिक कार्यवाही, वाद या अन्य कानूनी कार्यवाही संस्थित करने से रोका गया है, इस प्रकार, अधिनियम 1990 के तहत वैधानिक प्रावधानों में एक उल्लेखनीय अंतर है, जो बहुत व्यापक महत्व के हैं और सख्ती से लागू किया जाना चाहिए। इस प्रकार, स्वीकृति का प्रश्न एक लोक सेवक की रक्षा के लिए सर्वोपरि महत्व का है, जिसने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अच्छे विश्वास में काम किया है। किसी बेईमान व्यक्ति की शिकायत पर लोक सेवक को अनावश्यक रूप से परेशान न किया जा सके, इसके लिए कार्यपालिका प्राधिकारी की ओर से यह अनिवार्य है कि उसकी रक्षा करें। हालाँकि, कार्य की शिकायत और लोक सेवक की शक्तियों और कर्तव्यों के बीच समझदारी का संबंध होना चाहिए। जिस कार्य की शिकायत की गई है, वह आधिकारिक कर्तव्य के पालन में की गई कार्रवाई के विवरण में आ सकता है। इसलिए, यदि कथित कार्य या चूक लोक सेवक को उचित संबंध अंतर-संबंध या यदि वह अपने कर्तव्य के निर्वहन के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है, तो वह स्वीकृति के संरक्षण का हकदार हो जाता है। यदि कानून को मंजूरी की आवश्यकता है, और अदालत एक लोक सेवक के खिलाफ मुकदमा बिना स्वीकृति के चलाती है तो लोक सेवक को क्षेत्राधिकार का मुद्दा उठाने का अधिकार है और तो स्वीकृति के अभाव में पूरी कार्रवाई को प्रारंभ से ही शून्य कर दिया जा सकता है। किसी व्यक्तिगत मामले के तथ्यों के आधार पर मुकदमे के दौरान भी मंजूरी प्राप्त की जा सकती है और विशेष रूप से कार्यवाही के किस चरण में, मंजूरी की आवश्यकता सामने आई है।

यह प्रश्न कि क्या शिकायत किया गया कार्य, कर्तव्य के पालन में या कर्तव्य के कथित पालन में किया गया है, यह निर्धारित किया जाना है सक्षम प्राधिकारी द्वारा, न कि न्यायालय द्वारा। विधायिका ने वैधानिक प्राधिकरण को मंजूरी देने या इसे रोकने के लिए "पूर्ण शक्ति" प्रदान की है, और इस विषय में न्यायालय की कोई भूमिका नहीं है। ऐसी स्थिति में न्यायालय सक्षम वैधानिक प्राधिकारी की मंजूरी के बिना आगे नहीं बढ़ेगा। इस प्रकार, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में केंद्र सरकार की मंजूरी आवश्यक है, जब तक केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकृति प्रदान नहीं की जाती है, तब तक संबंधित न्यायालय के पास संज्ञान लेने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। [पैरा 52-56) [653-ए-डी; 6!i4-सी-एच; 655-ए-ई]

5. सीजेएम कोर्ट ने विकल्प दिया सेना के उच्चतर अधिकारियों को यह चुनने के लिए कि क्या मुकदमा का विचारण कोर्ट-मार्शल द्वारा आयोजित किया जाए या आपराधिक अदालत द्वारा, जैसा कि सेना अधिनियम की धारा 125 के तहत आवश्यक है। सेना के अधिकारियों की फाइल नोटिंग से उनके निर्णय का पता चला कि यदि इस न्यायालय द्वारा यह निर्णय लिया जाता है कि मंजूरी की आवश्यकता है और केंद्र सरकार ने मंजूरी दी, उस स्तर पर लाभ उठाने का विकल्प होगा। इस प्रकार, सैन्य प्राधिकरण वाद देखनेवाली आपराधिक न्यायालय को कह सकता है, सेना अधिनियम की धारा 125 के प्रावधानों के मद्देनजर आरोपी पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा। हालांकि, सेना अधिनियम की धारा 126 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए प्राधिकरण द्वारा दिया गया विकल्प अंतिम नहीं है। अपराधी पर मुकदमा चलाने के अधिकार क्षेत्र वाला आपराधिक न्यायालय सक्षम सैन्य अधिकारी को कानून के अनुसार कार्रवाई करने के लिए संबंधित मजिस्ट्रेट को अपराधी को सौंपने को कह सकता है या केन्द्र सरकार के संदर्भ में लंबित कार्यवाही को स्थगित करने के लिए, यदि वह आपराधिक न्यायालय की राय है कि उस अपराध के संबंध में अपने समक्ष कार्यवाही शुरू की जाए। इस प्रकार, यदि आपराधिक न्यायालय ऐसा अनुरोध करता है, तो सैन्य अधिकारी को या तो इसका अनुपालन करना होगा या केंद्र सरकार को संदर्भित करना होगा जिसके आदेश मुकदमे के स्थान के संबंध में अंतिम होंगे। इसलिए, सैन्य अधिकारी द्वारा प्रयोग किया गया विवेक केंद्र सरकार के नियंत्रण के अधीन है। इस तरह के मामले को सीआरपीसी की धारा 475 के प्रावधानों द्वारा नियंत्रित किया जा रहा है, जिसे कश्मीर क्रिमिनल कोर्ट और कोर्ट-मार्शल (क्षेत्राधिकार का समायोजन) नियम, 1983 के प्रावधानों के साथ पढ़ा जाता है। उक्त नियम, 1983 का नियम 6 में यह प्रावधान है कि यदि अभियुक्त को सैन्य प्राधिकारियों को सौंप दिया गया है तो एक कोर्ट-मार्शल द्वारा विचारण किया जाना है, आपराधिक अदालत की कार्यवाही पर रोक रहेगी। उसके नियम 7 में आगे प्रावधान है कि जब एक आरोपी को आपराधिक अदालत द्वारा सेना के अधिकारी को सुपुर्द किया गया है, संबंधित प्राधिकारी आपराधिक अदालत को सूचित करेंगे कि क्या आरोपी पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया गया है या उसके खिलाफ अन्य प्रभावी कार्यवाही की गई है या लेने का आदेश दिया गया है। यदि मजिस्ट्रेट सूचित किया जाता है कि अभियुक्त पर मुकदमा नहीं चलाया गया है या अन्य प्रभावशाली कार्यवाही नहीं किया गया है, मजिस्ट्रेट राज्य सरकार को परिस्थितियों की रिपोर्ट देगा जो केंद्र सरकार के परामर्श से यह सुनिश्चित करने के लिए उचित कदम उठा सकती है कि आरोपी व्यक्ति के साथ कानून के अनुसार व्यवहार किया जाए सेना अधिनियम की धारा 125 के तहत, विचारण करने का

विकल्प बनाने का चरण; आरोप पत्र दायर करने के बाद और संज्ञान लेने या आरोप तय करने से पहले आपराधिक न्यायालय द्वारा नहीं, बल्कि कोर्ट-मार्शल द्वारा किया जाता है। अधिनियम 1990 की धारा 7 में गैर-बाध्यकारी खंड शामिल नहीं है। इसलिए, एक बार जब यह विकल्प बन जाता है कि अभियुक्त पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जाना है, तो आगे की कार्यवाही सेना अधिनियम की धारा 70 के उपबंधों के अनुसार होगी और इस प्रयोजन के लिए केन्द्र सरकार की मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। [पैरा 57-58, 62, 64] [655-ई-656-ए-एफ; 657-एफ-जी; 658-सी-डी]

दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान, नई दिल्ली बनाम लेफ्टिनेंट कर्नल एस.के. लोरैया एआईआर 1972 एससी 2548; *बलबीर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य* 1994 (5) पूरक एससीआर 422; *राम सरूप बनाम भारत संघ और अन्य*। एआईआर 1965 एससी 247; *भारत संघ और अन्य बनाम मेजर हुसैन ए आई आर* 1998 SC 577 - पर भरोसा किया।

6. संक्षेप में:

- (i) प्रासंगिक सांविधिक प्रावधान और नियम का संयुक्त पठन यह स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम 1990 की धारा 7 में निहित "संस्थित" शब्द का अर्थ है अपराध का संज्ञान लेना और अनुसंधान एजेंसी द्वारा केवल आरोप पत्र प्रस्तुत करना नहीं।
- (ii) सक्षम सेना प्राधिकारी को यह चुनने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करना होता है कि क्या विचारण कोर्ट मार्शल अथवा आपराधिक न्यायालय न्यायालय द्वारा किया जाएगा आरोप पत्र दायर किए जाने के बाद, न कि न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान लिए जाने के बाद।
- (iii) इस मामले के तथ्यों के लिए केंद्र सरकार की मंजूरी की आवश्यकता होती है आपराधिक अभियोजन/विचारण की प्रक्रिया शुरू करने के लिए।
- (iv) यदि अभियुक्त पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाने का विकल्प लिया जाता है तो केन्द्र सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। [पैरा 66] [658-एफ-एच; 659-ए-सी]

7. इसे ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित निर्देश पारित किए जाते हैं:

- (i) सेना में सक्षम प्राधिकारी आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर निर्णय इस संबंध में लेगा कि क्या विचारण आपराधिक अदालत द्वारा किया जाएगा या कोर्ट-मार्शल द्वारा और उसके तुरंत बाद संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को इसकी सूचना देगा।
- (ii) यदि मामले का विचारण एक कोर्ट मार्शल द्वारा करने का विकल्प बनाया जाता है उक्त कार्यवाही तत्काल शुरू होगी। और कानून के अनुसार

सखती से शिघ्रता के साथ निस्तारण किया जाएगा।

- (iii) यदि आपराधिक न्यायालय द्वारा आरोपी के विचारण का विकल्प बनाया जाता है तो केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ऐसे विकल्प की प्राप्ति के चार सप्ताह के भीतर स्वीकृति प्रदान करने के लिए केन्द्र सरकार को आवेदन करेगी और यदि ऐसा कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो केंद्र सरकार इस तरह के आवेदन की प्राप्ति की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर इस पर अंतिम निर्णय लेगी।
- (iv) यदि केंद्र सरकार द्वारा मंजूरी दी जाती है तो आपराधिक अदालत इसका विचारण करेगी और शीघ्रता से उसपर निष्कर्ष देगी। [पैरा 67)

[659-डी-एच; 670-ए-बी

केस लॉ संदर्भ:

एआईआर 1991 एससी 506	पर भरोसा किया	पैरा 12
1993 (1) एससीआर 340	पर भरोसा किया	पैरा 12
1972 (2) एससीआर 965	पर भरोसा किया	पैरा 12
एआईआर 1982 एससी 818	पर भरोसा किया	पैरा 12
एआईआर 1968 एससी 488	पर भरोसा किया	पैरा 14
एआईआर 1970 एससी 1093	पर भरोसा किया	पैरा 15
एआईआर 1970 एससी 1384	पर भरोसा किया	पैरा 16
एआईआर 1998 एससी 492	पर भरोसा किया	पैरा 17
एआईआर 1964 एससी 1541		पैरा 18
2011 (6) एससीआर 138	पर भरोसा किया	पैरा 18,25
1979 (2) एससीआर 717	पर भरोसा	पैरा 19

क्रिया

1976 (0) पूरक एससीआर 524 पर भरोसा क्रिया	पैरा 19
2000 (3) पूरक एससीआर 171 पर भरोसा क्रिया	पैरा 20
1995 (6) पूरक एससीआर 236 पर भरोसा क्रिया	पैरा 22
एआईआर 2004 एससी 4174 पर भरोसा क्रिया	पैरा 22
2005 (4) सुपर 1।। एससीआर 77 पर भरोसा क्रिया	पैरा 22
2006 (1) एससीआर 124 पर भरोसा क्रिया	पैरा 22
2008 (6) एससीआर 912 पर भरोसा क्रिया	पैरा 22
2009 (12) एससीआर 1048 पर भरोसा क्रिया	पैरा 22
1969 एससीआर 22 पर भरोसा क्रिया	पैरा 23
1979 (1) एससीआर 349 पर भरोसा क्रिया	पैरा 23
2009 (11) एससीआर 790 पर भरोसा क्रिया	पैरा 25
1964 एससीआर 74, पर भरोसा क्रिया	पैरा 24
1966 एससीआर 88सीआई पर भरोसा क्रिया	पैरा 25
एआईआर 1966 एससी 1786 पर भरोसा क्रिया	पैरा 25
1993 (2) पूरक एससीआर 123 पर भरोसा क्रिया	पैरा 25
2004 (3) एससीआर 504 पर भरोसा क्रिया	पैरा 26
1967 एससीआर 201 पर भरोसा क्रिया	पैरा 26

2009 (8) एससीआर	85	पर भरोसा किया	पैरा 41
1961 एससीआर 91		पर भरोसा किया	पैरा 43
1983 (2) एससीआर	249	पर भरोसा किया	पैरा 43
1959 एससीआर 164		पर भरोसा किया	पैरा 44
1971 (3) एससीआर 9		पर भरोसा किया	पैरा 44
एआईआर 1981	एससी 1514	पर भरोसा किया	पैरा 44
एआईआर 1985	एससी 1669	भरोसा पर किया	के सदृश 44
2002 (1) सुइपल। एससीआर 289		पर भरोसा किया	पैरा 44
2008 (12) एससीआर 608		पर भरोसा किया	पैरा 44
1981 एस 636 जी		पर भरोसा किया	पैरा 44
1969 अनु 414 सूचि		पर भरोसा किया	पैरा 59
1994 (5) पूरक एससीआर 422		पर भरोसा किया	पैरा 61
एआईआर 1965 एससी: 247		पर भरोसा किया	पैरा 61
एआईआर 1998 एससी: 577		पर भरोसा किया	पैरा 65

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील संख्या 257/2011 आदि।

561ए 78 और 80/2006 साथ आपराधिक अपील संख्या 55/2006 में जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश दिनांक 10.07.2007 से।

पी.पी. मल्होत्रा, मोहन परासरन, एचपी रावल, एएसजी, एम.एस. गणेश, अशोक भान, डी.एल. चिदानन्द, बी.के. प्रसाद, अनिल कटियार, डी.एस. माहरा, आर. अय्याम

पेरुमल, सुकुन के.एस. चंदेले, पी.के.डे, डॉ. चौधरी शमसुद्दीन खान, अरविंद कुमार शर्मा। उपस्थित होने वाले पक्षों के लिए।

न्यायालय का निर्णय **माननीय न्यायमूर्ति डॉ . बी.एस. चौहान**, द्वारा दिया गया।

1. आपराधिक अपील संख्या 257/2011 दण्ड प्रक्रिया संहिता(जम्मू और कश्मीर) (इसके बाद 'संहिता' के रूप में कहा जाता है) की धारा 561 ए के तहत याचिका संख्या 78 और 80/2006 में जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय एवं आदेश दिनांक 10-07-2007 के विरुद्ध प्राथमिकता दी गई है जिसके द्वारा पुनरीक्षण फाइल संख्या 16/2006 में अपर सत्र न्यायधीश श्रीनगर के आदेश दिनांक 30-11-2006 और केन्द्रीय अनुसंधान ब्यूरो (इसके बाद 'सीबीआई' कहा जाता है) के द्वारा दाखिल आरोप पत्र को न ग्रहण करने के लिए अपील कर्ता द्वारा दाखिल आवेदन में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट श्रीनगर द्वारा खारिजी आदेश दिनांक 24-08-2006 को उच्च न्यायालय द्वारा बहाल रखा गया है।

2. इस अपील के निपटान से संबंधित संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:

- (1) जम्मू और कश्मीर के अनंतनाग जिले के चित्तिसिंग पोरा गांव में 20-3-2000 को आतंकवादियों ने 36 सिखों की हत्या कर दी थी। इसके तुरंत बाद पूरे इलाके में आतंकियों की तलाश शुरू हो गई और 25.3.2000 को 7 राष्ट्रीय राइफल्स (इसके बाद 'आरआर' के रूप में कहे जाने वाले) कर्मियों द्वारा गाँव पथरिबल पंचलथन, जिला अनंतनाग, जम्मू और कश्मीर में कथित आतंकवादियों द्वारा 5 लोगों की हत्या कर दी गयी थी।
- (2) 25-3-2000 को 7 आरआर द्वारा 5 व्यक्तियों की हत्या के संबंध में पत्रिबल में चिट्टिसिंग पोरा में सिखों के नरसंहार के लिए उन्हें जिम्मेदार होने का दावा करते हुए, एक शिकायत नंबर 241/जीएस (ओपीस) दिनांक 25.3.2000 को जम्मू-कश्मीर के अनंतनाग जिले के तत्कालीन एडजुटेंट, मेजर अमित सक्सेना द्वारा एफआईआर दर्ज करने के लिए पुलिस स्टेशन अचबल, जिला अनंतनाग, जम्मू-कश्मीर भेजा गया था यह कहते हुए कि 25-3-2000 को सुबह 0515 बजे से 1500 बजे तक पांचालन के जंगलों में एक विशेष घेराबंदी और तलाशी अभियान के दौरान आतंकवादियों और उस यूनिट के सैनिकों के बीच एक मुठभेड़ हुई और उस ऑपरेशन में, इस अभियान में 5 अज्ञात आतंकवादी मारे गए थे। शिकायत प्राप्त होने पर रणबीर दण्ड संहिता की धारा 307 और धारा 7/25 शस्त्र अधिनियम, 1959 के तहत एफआईआर नंबर 15/200

अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ जी दर्ज किया गया था। मेजर अमित सक्सेना (एडजुटेंट) द्वारा दिनांक 25-3-2000 को एक जब्ती ज़ापन तैयार किया गया था जिसमें उपर्युक्त अभियान में मारे गए सभी 5 अज्ञात आतंकवादियों से हथियार और गोला-बारूद की जब्ती दर्शाई गई थी जिसमें एके-47 राइफलें (5), एके-47 मैगजीन राइफलें (12), रेडियो सेट (2), एके -48 गोला बारूद (44 राउंड), हैंड ग्रेनेड

डेटोनेटर (4) और डेटोनेटर टाइम डिवाइस (2) शामिल थीं। उक्त जब्ती ज़ापन पर गवाह फारूक अहमद गुर्जर और मोहम्मद अयूब गुर्जर निवासी वुजुखान, पांसलथन, जम्मू और कश्मीर के हस्ताक्षर थे।

(3) 7 आरआर ने बरामद किए गए हथियारों और गोला बारूद को जमा किया फील्ड आयुध डिपो के साथ । हालांकि, स्थानीय पुलिस ने जोर देकर कहा कि सेना मुठभेड़ में मारे गए आतंकवादियों के पास से कथित रूप से बरामद हथियार और गोला-बारूद सौंपने में विफल रही और यह सबूतों को गायब करने के समान है, जो धारा 201 आरपीसी के तहत अपराध है। इस संबंध में, पत्राचार हुआ था और मेजर अमित सक्सेना, तत्कालीन एडजुटेंट द्वारा दिनांक 25-3-2000 को एक विशेष स्थिति रिपोर्ट मुख्यालय-1, सेक्टर आरआर को भेजी गई थी जिसमें कहा गया था कि पुलिस की जानकारी के आधार पर एसटीएफ के साथ एक संयुक्त अभियान दिनांक 25-3-2000 को पथरीबल घाटी के जंगल में चलाये गए इस घटना के परिणामस्वरूप उक्त घटना घटी। हालांकि, यह भी जोड़ा गया कि मारे गए आतंकवादियों के पास से कथित तौर पर बरामद गोला-बारूद एसटीएफ द्वारा ले लिया गया था।

(4) 25-3-2000 को 7 आरआर द्वारा इन 5 व्यक्तियों की हत्या के विरोध में घाटी में लंबे जुलूस निकाले गए थे, जिसमें आरोप लगाया गया था कि वे नागरिक थे और सेना के कामकों ने फर्जी मुठभेड़ में उनकी हत्या कर दी थी। स्थानीय आबादी ने इसे हिंसा का एक बर्बर कृत्य माना और पूरी घटना की स्वतंत्र जांच की मांग की गई थी ।इस प्रकार, इसके मददेनजर, जम्मू और कश्मीर सरकार के अनुरोध पर, दिल्ली पुलिस विशेष स्थापना अधिनियम, 1946 (इसके बाद अधिनियम 1946 के रूप में जाना जाता है) की धारा 6 के तहत दिनांक 19.12.2000 को एक अधिसूचना जारी की गई थी। इसके अनुसरण में, कामक मंत्रालय, सरकार भारत सरकार ने अधिनियम, 1946 की धारा 5 के अंतर्गत दिनांक 22-1-2003 को अधिसूचना भी जारी की है जिसमें केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को 25-3-2000 को पथरीबल में कथित मुठभेड़ में मारे गये 5 लोगों सहित चार मामलों की जांच करने के लिए कहा गया है।

(5) सीबीआई ने पथरीबल घटना में अनुसंधान किया और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-सह-विशेष मजिस्ट्रेट, सीबीआई, (इसके बाद 'सीजेएम' कहा जाता है) श्रीनगर, के न्यायालय में दिनांक 9-5-2006 को आरोप पत्र दायर किया यह आरोप लगाते हुए कि यह एक फर्जी मुठभेड़ थी, जो कर्नल अजय सक्सेना (ए-1), मेजर ब्रजेंद्र प्रताप सिंह (ए-2), मेजर सौरभ शर्मा (ए-3), सूबेदार एलड्रेस खान (ए-4) द्वारा रची गई आपराधिक साजिश

का परिणाम था और 7 आरआर के सैनिकों के कुछ सदस्य निर्दोष व्यक्ति के मारे जाने के लिए जिम्मेदार थे। मेजर अमित सक्सेना (ए-5) (एडजुटेंट) उक्त घटना में हथियार और गोला-बारूद की बरामदगी को दर्शाने वाला एक झूठा जब्ती मेमो तैयार किया और मामला दर्जकरने के लिए पुलिस स्टेशन में झूठी शिकायत भी दी गई उक्त पांच नागरिकों के विरुद्ध उनमें से कुछ को विदेशी आतंकवादियों के रूप में दिखाया गया है और वरिष्ठ अधिकारियों को झूठी जानकारी देने से यह धारणा बनी कि मुठभेड़ वास्तविक थी और इसलिए, आरपीसी की धारा 120- बी के साथ पठित धारा 342” 304, 302, 201 और उसके मूल अपराधों के तहत उपरोक्त अपराध के सबूतों को गायब कर दिया। मेजर अमित सक्सेना (ए- 5) (एडजुटेंट) पर उपरोक्त अपराधों के सम्बन्ध में धारा 201 आरपीसी के साथ पठित धारा 120 बी और धारा 201 आरपीसी के तहत मूल अपराध करने का पुनः आरोप लगाया गया था।

- (6) विद्वान सीजेएम ने मामले पर विचार करने पर पाया कि आरोप पत्र में लगाए गए आरोपों की सत्यता और सबूतों के विश्लेषण की जांच नहीं की जा सकती है क्योंकि यह मानने के समान होगा कि क्षेत्राधिकार उनमें निहित नहीं है। ये था इसलिए सशस्त्र बल जम्मू और कश्मीर (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1990 (इसके बाद 'अधिनियम 1990' कहा जाता है) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, जो उक्त अधिनियम के अंतर्गत कार्य करने वाले व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करते हैं ।
- (7) सीजेएम, श्रीनगर ने सेना को इस विकल्प का प्रयोग करने का अवसर दिया कि क्या सक्षम सैन्य प्राधिकारी इस मामले की सुनवाई कोर्ट-मार्शल के माध्यम से करना पसंद करेंगे जी सेना अधिनियम, 1950 की धारा 125 (इसके बाद 'सेना अधिनियम' कहा जाता है) के प्रावधानों के तहत । दिनांक 24-05-2006 को सेना के अधिकारियों ने न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि केन्द्र सरकार की पूर्व स्वीकृति को ध्यान में रखते हुए कोई अभियोजन नहीं चलाया जा सकता है अधिनियम 1990 की धारा 7 के उपबंधों के तहत और इसलिए, सीबीआई को आरोप पत्र वापस करके कार्यवाही को बंद किया जाए।
- (8) सीजेएम ने दिनांक 24-08-2006 के आदेश द्वारा आवेदन को खारिज कर दिया अभिनिर्धारित करते हुए कि उक्त अदालत के पास जांच एजेंसी द्वारा दायर दस्तावेजों की जांच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और विचारण न्यायालय को था यह पता लगाने के लिए कि *क्या शिकायत की गई कार्रवाई आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के दायरे में आती है या नहीं।* सीजेएम खुद सबूतों और आरोपपत्र के साथ प्रस्तुत की गई सामग्री का विश्लेषण नहीं कर सकते इस तथ्य पर विचार करने के लिए, कि क्या अधिकारियों ने अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में अच्छे विश्वास

में कार्य किया था; अन्यथा ऐसे अधिकारियों का कार्य अपराध की प्रकृति को देखते हुए अवैध या गैरकानूनी था।

(9) 24.8.2006 के सीजेएम के आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने सत्र न्यायालय, श्रीनगर के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की और इसे दिनांक 30.11.2006 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। हालांकि, पुनरीक्षण अदालत ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया कि वह सेना के अधिकारियों को सेना अधिनियम की धारा 125 के तहत विकल्प प्रयोग करने का एक और मौका दें।

(10) अपीलकर्ता ने संहिता की धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। न्यायालय ने दिनांक 10.7.2007 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से नीचे की अदालतों के आदेशों की पुष्टि की और कहा कि प्रतिबंधों का मुख्य उद्देश्य सेना के अधिकारियों को उनके कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए कार्य के लिए कष्टप्रद, दुर्भावनापूर्ण और झूठे अभियोजन से बचाकर निडर होकर अपने कर्तव्यों का पालन करने में सक्षम बनाना है। तथापि, इस बात की जांच की जानी चाहिए कि क्या उनकी कार्रवाई अधिनियम, 1990 के अंतर्गत आती है। सीजेएम के पास सुपुर्दगी के समय इस तरह के मुद्दे की जांच करने की शक्ति नहीं है इस स्तर पर, सुपुर्दगी न्यायालय को केवल इस बात की जांच करनी होती है कि क्या कोई मामला बनता है और यदि हां, तो अपराध किसके द्वारा विचारणीय है।

इसलिए, यह अपील।

3. आपराधिक अपील संख्या 55/2006 को प्राथमिकता दी गई है, गौहाटी उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 117/2004 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 28-03-2005 के विरुद्ध जिसके द्वारा विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट कामरूप के आदेश को बहाल रखा गया है जिसमें सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1958 (इसके बाद 'अधिनियम 1958' कहा जाता है) की धारा 6 के सशस्त्र बलों के कर्मियों के संबंध में।

4. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य और परिस्थितियां इस प्रकार हैं:

(i) पूर्वोक्त में विद्रोह को रोकने के लिए, संसद ने अधिनियम 1958 को अधिनियमित किया, जिसमें केंद्र सरकार के साथ-साथ राज्य के राज्यपाल को आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना के माध्यम से यह घोषित करने के लिए अधिकृत किया गया था, राज्य के पूर्ण या आंशिक अशांत क्षेत्र के रूप में। अधिनियम 1958 की धारा 4 ने

अधिनियम के तहत कार्य करने वाले सेना कर्मियों को कुछ शक्तियां प्रदान कीं हैं। जिसमें उचित संदेह पर बिना वारंट के गिरफ्तार करने, किसी भी एकत्रित तथा छिपाए हुए शस्त्र और गोला-बारूद को नष्ट करने और गोली चलाने या अन्यथा शक्तियों का उपयोग करने की शक्ति भी शामिल है। यहां तक कि कानून और व्यवस्था का उल्लंघन करने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ मौत का कारण बनने की सीमा तक और आगे तलाशी और जब्ती करने के लिए। दिनांक 27-11-1990 की अधिसूचना के तहत अधिनियम, 1958 के अंतर्गत पूरे असम राज्य को अशांत क्षेत्र घोषित किया गया था और सेना की मांग की गई थी और उसे राज्य के विभिन्न भागों में उग्रवाद से लड़ने और कानून और व्यवस्था बहाल करने के लिए तैनात किया गया था।

(ii) 22.02.1994 को पंजाब रेजिमेंट की 18वीं बटालियन को असम के तिनसुखिया जिले में सैखोवा रिजर्व फॉरेस्ट के क्षेत्र में विद्रोह-रोधी अभियान चलाने के लिए तैनात किया गया था। उक्त सेना के जवानों ने उन विद्रोहियों का सामना किया, जिन्होंने घात लगाकर गोलीबारी की। सशस्त्र बटालियन ने जवाबी गोलीबारी की और इस प्रक्रिया में कुछ आतंकवादी मारे गए। बटालियन ने मुठभेड़ स्थल पर तलाशी जारी रखी और परिणामस्वरूप, 5 शव उग्रवादियों के साथ-साथ कुछ हथियार और गोला-बारूद बरामद किए गए हैं। उक्त घटना के संबंध में एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी थाना डूम डूमा में। स्थानीय पुलिस ने भी 23-2-1994 और 1-3-1994 को उस स्थान का दौरा किया और मामले की अनुसंधान की। सेना अधिनियम के तहत प्रदान किए गए सैन्य अनुसंधान न्यायालय के तहत सेना द्वारा इस घटना की अनुसंधान की गई थी। राज्य सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार दो मजिस्ट्रेट जांच की गई थी और अपीलकर्ता के अनुसार, सेना के जवानों के बयान को सही पाया गया और एक निष्कर्ष दर्ज किया गया कि 'आतंकवाद विरोधी अभियान आधिकारिक कर्तव्य का पालन करते हुए किया गया था'।

(iii) गैर-पक्षकारों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दो रिट याचिकाएं दायर की गई थीं, जिसमें आरोप लगाया गया था कि सेना के अधिकारियों ने 9 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया और एक फर्जी मुठभेड़ में उनमें से 5 को मार

डाला। हाईकोर्ट ने सीबीआई को इस मामले की अनुसंधान करने का निर्देश दिया है।

- (iv) सीबीआई ने अनुसंधान पूरी कर 7 सेना के जवानों के खिलाफ विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, कामरूप की न्यायालय में आरोप पत्र भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'आईपीसी' कहा जाता है) की धारा 302/201 पठित धारा 109 के तहत दाखिलकी, विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता यानी सेना मुख्यालय को उक्त आरोपपत्र एकत्र करने के लिए दिनांक 30.5.2002 को नोटिस जारी किया। अपीलकर्ता ने उक्त न्यायालय से अनुरोध किया इस मामले को आगे नहीं बढ़ाने के लिए चूंकि सेना कामकों द्वारा अपने सरकारी कर्तव्य के प्रदर्शन में कार्रवाई की गई थी और इस प्रकार, उन्हें अधिनियम, 1958 के तहत संरक्षित किया गया था और इस मामले में आगे बढ़ने के लिए केंद्र सरकार की मंजूरी आवश्यक थी। विद्वान विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 10.11.2003 के आदेश के तहत अपीलकर्ता के मामले को खारिज कर दिया। व्यथित होने के कारण, अपीलकर्ता ने पुनरीक्षण याचिका को प्राथमिकता दी, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 28.3.2005 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

इसलिए, यह अपील।

5. चूंकि दोनों अपीलों में शामिल तथ्य और कानूनी मुद्दे समान हैं, इसलिए हम आपराधिक अपील संख्या 257/2011 को एक प्रमुख मामले के रूप में लेते हुए एक सामान्य निर्णय द्वारा दोनों अपीलों का निस्तारण करते हैं।
6. श्री मोहन परासरन और श्री पीपी मल्होत्रा, विद्वान अपर महाधिवक्ता भारत संघ और सेना के जवानों की ओर से पेश होकर सॉलिसिटर जनरलों ने तर्क दिया है कि अधिनियम 1990 की धारा 7 का जनादेश स्पष्ट है और यह स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि कोई अभियोजन, केंद्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना संस्थित नहीं किया जा सकता है। यह तर्क दिया कि अभियोजन आरोपपत्र दायर किए जाने और अदालत द्वारा प्राप्त होने के समय संस्थित/ शुरू किया गया माना जाएगा। ऐसी स्वीकृति/ प्राप्त बिना अधिकार-क्षेत्र के है |सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति आरोप पत्र अभिलेख पर लेने में अदालत के लिए एक पूर्व शर्त है यदि कथित अपराध आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया है और ऐसा मुद्दा अदालत के अधिकार क्षेत्र को छूता है।
7. दूसरी ओर, सीबीआई की ओर से उपस्थित श्री एच.पी. रावल, विद्वान एएसजी, श्री अशोक भान, विद्वान वरिष्ठ वकील, और हस्तक्षेपकर्ताओं की ओर से उपस्थित श्री एम.एस. गणेश (हालांकि हस्तक्षेप के लिए आवेदन की अनुमति नहीं है) ने अपीलों का जोरदार विरोध किया है, जिसमें तर्क दिया गया है कि आपराधिक मामले की संस्थित का अर्थ है मामले का संज्ञान लेना, अदालत में

आरोप पत्र प्रस्तुत करना/दाखिल करना संस्थिति नहीं मानी जाती है सीजेएम की अदालत ने अपराध का संज्ञान नहीं लिया है, इसलिए अपील समय से पहले की गई है। अन्यथा भी, किसी साजिश को अंजाम देने में फर्जी मुठभेड़ में निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करना सरकारी कर्तव्य का हिस्सा नहीं हो सकता है और इस प्रकार, मामले के तथ्यों के लिए किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं।

8. हमने दोनों पक्षों के लिए विद्वान वकील द्वारा की गई प्रतिद्वंदी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

9. अधिनियम, 1990 के सांविधिक उपबंधों को ध्यान में रखते हुए और उक्त अधिनियम के उद्देश्य पर भी विचार करते हुए मामले की जांच किए जाने की आवश्यकता है। इसकी जांच इस प्रकार की जानी है यह बताने के लिए कि क्या आरोपपत्र दायर होने के बाद अदालत इस पर विचार कर सकती है और केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना आरोप तय करने के लिए आगे बढ़ सकती है। अधिनियम 1990 जम्मू और कश्मीर राज्य में अशांत क्षेत्र में सशस्त्र बलों के सदस्यों पर कुछ विशेष शक्तियां प्रदान करता है। अशांत क्षेत्र को परिभाषित किया गया है और इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि जिस स्थान पर घटना हुई थी, वह अधिनियम 1990 के तहत अधिसूचित था। अधिनियम 1990 की धारा 4 सशस्त्र अधिकारी को विशेष शक्तियां प्रदान करती है सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए जहां वह ऐसा करना आवश्यक समझता है, वहां उपाय करने के लिए बल देता है। हालांकि, उसे परिस्थितियों के अनुसार उचित चेतावनी देनी चाहिए और यहां तक कि गोली चलाना बल का उपयोग करना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप कानून और व्यवस्था का उल्लंघन करने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ मौत हो सकती है और अशांत क्षेत्र में पांच या अधिक व्यक्तियों के एकत्र होने या हथियार आदि ले जाने पर रोक लगा सकता है। ऐसे अधिकारी को किसी भी डंप हथियार को नष्ट करने, बिना वारंट के किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने, जिसने संज्ञेय अपराध किया है और किसी भी गिरफ्तारीके लिए परिसर में प्रवेश करने और तलाशी लेने का अधिकार दिया गया है। अधिनियम 1990 की धारा 6 के अनुसार ऐसे गिरफ्तार व्यक्ति और जब्त की गई संपत्ति को ऐसे अधिकारी द्वारा स्थानीय पुलिस को सौंप दिया जाए।

10. अधिनियम, 1990 की धारा 7 में सेना के कामकों को अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किये गये किसी भी कार्य या कथित रूप से किये गये कार्य के संबंध में व्यापक सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान है।

पूरा मुद्दा अधिनियम, 1990 की धारा 7 की व्याख्या के संबंध में है कि क्या इसमें प्रयुक्त *संस्थिति* शब्द का अर्थ न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल करना/प्रस्तुत करना/प्रस्तुत करना है या संज्ञान लेना है और क्या न्यायालय केन्द्र सरकार की *पूर्व स्वीकृति* के बिना विचारण को आगे बढ़ा सकता है।

11. अधिनियम 1990 की धारा 7 के अनुरूप प्रावधान आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद 'सीआरपीसी कहा जाता है') की धारा 45(1) और 197(2) में मौजूद है। अधिनियम, 1990 की धारा 7 के उपबंध अनिवार्य हैं और यदि अधिनियम 1990 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किए गए या किए जाने वाले किसी भी कार्य के संबंध में किसी व्यक्ति के विरुद्ध किसी भी मुकदमे, अभियोजन या कानूनी कार्यवाही की संस्थिति से पहले अक्षरशः अनुपालन नहीं किया जाता है, तो इसे अमान्य और अवैध किया जा सकता है क्योंकि प्रावधानों के लिए अभियोजन की स्थापना से पहले केंद्र सरकार की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती है। अपीलकर्ताओं के अनुसार, अभियोजन की "संस्थिति" संज्ञान लेने से पहले का एक चरण है और इसलिए, यह शब्द "संस्थिति" *संज्ञान* लेने वाले शब्दों से अलग है। अधिनियम की योजना में यह अपेक्षा की गई है कि अधिनियम, 1990 के तहत काम करने वाले किसी भी सैन्य अधिकारी के विरुद्ध शुरू की गई किसी भी कानूनी कार्यवाही को ऐसी किसी भी कार्यवाही को शुरू करने से पहले कड़ी परीक्षा के अधीन किया जाना चाहिए। सेना के अधिकारियों को विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं खतरनाक परिस्थितियों का सामना करने के लिए जैसे सरकार को प्रभावित करने या लोगों में आतंक फैलाने या लोगों के किसी भी वर्ग को अलग-थलग करने की दिशा में या विभिन्न वर्गों के बीच सद्भाव पर प्रतिकूल प्रभाव डालना जैसी आतंकवादी कृत्यों से जुड़ी गतिविधियों को रोकने के लिए नागरिक बल की सहायता में सशस्त्र बल का प्रयोग करने, इसलिए, उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए धारा 7 की व्याख्या करने की आवश्यकता है।

12. 'अभियोजन' का अर्थ है किसी अपराध के आरोप में आरोपी व्यक्ति का 'अपराध' या 'निर्दोषता' का निर्धारण करने के उद्देश्य से कानून की अदालत के समक्ष एक आपराधिक कार्रवाई, दीवानी मुकदमा कानून द्वारा किसी पक्ष में निहित अधिकार की प्राप्ति के लिए कानून की अदालत के समक्ष स्थापित एक सिविल ई कार्रवाई को संदर्भित करता है। वाक्यांश 'कानूनी कार्यवाही' दर्शाता है एक शब्द जिसका अर्थ है न्याय की अदालत में कार्यवाही एक उपाय प्राप्त करने के लिए जो कानून पीड़ित व्यक्ति को अनुमति देता है। इसमें कोई भी

औपचारिक कदम या उपाय शामिल हैं। यह 'न्यायिक कार्यवाही' का पर्याय नहीं है। हर न्यायिक एफ कार्यवाही एक कानूनी कार्यवाही है, लेकिन इसके विपरीत नहीं, इस कारण से कि एक 'कानूनी कार्यवाही' हो सकती है जो बिल्कुल भी न्यायिक नहीं हो सकती है, उदाहरण के लिए आयकर अधिनियम, बिक्री कर अधिनियम, मध्यस्थता कार्यवाही आदि के तहत मूल्यांकन जैसे वैधानिक उपाय। इसलिए, कानूनी कार्यवाही की अभिव्यक्ति का दायरा न्यायिक कार्यवाहियों की तुलना में बहुत व्यापक है। 'कानूनी कार्यवाही' अभिव्यक्ति को इसके सामान्य अर्थ में समझा जाना है, लेकिन यह विभागीय और प्रशासनिक कार्यवाही से काफी अलग है, उदाहरण के लिए व्यापार चिह्नों के पंजीकरण के लिए कार्यवाही आदि। धारा 7 में प्रयुक्त शब्द अर्थात् वाद, अभियोजन और कानूनी कार्यवाही अंतर-परिवर्तनीय नहीं है या एक ही अर्थ व्यक्त करती है। वाक्यांश कानूनी कार्यवाही को किसी विशेष मामले में लागू वैधानिक प्रावधान के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, और उसमें प्रयुक्त पूर्ववर्ती शब्दों को ध्यान में रखते हुए। *केंद्रीय उत्पाद शुल्क के सहायक कलेक्टर, गुंटूर बनाम रामदेव टोबैको कंपनी*, एआईआर 1991 एससी 506 के मामले में, इस न्यायालय ने केंद्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 की धारा 40(2) में निहित वाक्यांश "अन्य कानूनी कार्यवाही" का अर्थ समझाया, जिसमें इन शब्दों का उपयोग मुकदमे और अभियोजन के बाद किया गया है। न्यायालय ने माना कि इन शब्दों को पूर्ववर्ती शब्दों यानी सूट और अभियोजन के साथ एक ही प्रकार के (एजुस्डेम जेनेरिस) रूप में पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि वे एक जाति का गठन करते हैं। इसलिए, डीलर को कारण बताओ नोटिस जारी करना कि नियमों के तहत शुल्क की मांग क्यों नहीं की जानी चाहिए और सांविधिक नियमों के उल्लंघन के लिए जुर्माना क्यों नहीं लगाया जाना चाहिए और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा परिणामी अधिनिर्णय कार्यवाही "अन्य कानूनी कार्यवाही" अभिव्यक्ति के अंतर्गत उक्त कानून के संदर्भ में नहीं आएगी। 'कानूनी कार्यवाही' में प्रशासनिक कार्यवाही शामिल नहीं है।

महाराष्ट्र ट्यूब्स लिमिटेड बनाम स्टेट इंडस्ट्रियल और महाराष्ट्र निवेश निगम लिमिटेड एवं अन्य, (1993) 2

एससीसी 144 में, इस न्यायालय ने 'कार्यवाही' और 'कानूनी कार्यवाही' अभिव्यक्तियों से निपटा और अभिव्यक्ति 'कानूनी कार्यवाही' के शब्दकोश अर्थ पर भरोसा किया जैसा कि ब्लैक लॉ डिक्शनरी (चौथा संस्करण) में पाया जाता है, जो निम्नानुसार पढ़ा जाता है: "कोई भी कार्यवाही न्याय की अदालत में ... देनदार की किस संपत्ति से जब्त कर लिया जाता है और उसके सामान्य लेनदारों

से डायवर्ट किया जाता है.... यह शब्द सभी कार्यवाहियों को शामिल करता है अधिकृत या कानून द्वारा स्वीकृत, और न्याय या कानूनी न्यायाधिकरण की अदालत में लाया या सस्थित किया गया, एक अधिकार को पाने या एक उपाय का प्रवर्तन के लिए।”

न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अधिनियम के प्रावधानों के तहत वैधानिक प्राधिकारियों के समक्ष कार्यवाही कानूनी कार्यवाही के बराबर नहीं है।

'कानूनी कार्यवाही' का अर्थ है विनियमित या कानून द्वारा निर्धारित एक कार्यवाही जिसमें एक न्यायिक निर्णय दिया जा सकता है; इसका अर्थ है न्याय की अदालत में कार्यवाही जिसके द्वारा एक पक्ष एक उपाय का सहारा लेता है जो एक कानून प्रदान करता है, लेकिन इसमें प्रशासनिक और विभागीय कार्यवाही शामिल नहीं होती है। (यह भी देखें: *एस.वी.कोंडास्कर, आधिकारिक परिसमापक बनाम वीएम देशपांडे* आई.टी.ओ. और अन्य एआईआर 1972 एससी 878; *बाबूलाल बनाम मेसर्स हजारी लाल किशोरी लाल और अन्य* एआईआर 1982 एससी 818; और *बिनोद मिल्स कंपनी लिमिटेड, उज्जैन बनाम श्री. सुरेश चंद्र महावीर प्रसाद मंत्री, बॉम्बे, एआईआर 1987 एससी 1739*)।

अधिनियम 1990 की धारा 7 का प्रावधान प्रतिबंधित करता है केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना किसी भी सेना कामक के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही शुरू करना। इसलिए, केंद्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना आरोप पत्र दायर नहीं किया जा सकता है। अधिनियम 1990 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए 'कुछ भी किया' या 'कथित रूप से किया जाना है' शब्दों का प्रयोग अपने दायरे और दायरे में बहुत व्यापक है और इसमें दोहरे परीक्षण शामिल हैं। सबसे पहले, जिस कार्य या चूक की शिकायत की गई है, वह अधिनियम के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के दौरान किया गया होगा, अर्थात्, अपने कर्तव्य का पालन करते समय सेवा के दौरान और दूसरी बात, एक बार जब यह पाया जाता है कि यह किया गया है अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में ई, फिर धारा के तहत दी गई सुरक्षा 7 उदारतापूर्वक समझा जाना चाहिए। इसलिए, अधिनियम 1990 की धारा 7 के तहत निहित प्रावधान

(i) एक मामले की संस्थिति:

13. उपरोक्त शब्द के अर्थ का पता लागू अधिनियम/कानून की योजना को ध्यान में रखते हुए लगाया जाना चाहिए। अभिव्यक्ति का अर्थ दाखिल करना/प्रस्तुत करना या न्यायालय द्वारा प्राप्ति या स्वीकृति। सवाल यह उठता है कि क्या इसका मतलब केवल प्रस्तुति/ दाखिल करना या कुछ और जहां आदेश पारित करने

के लिए न्यायालय के दिमाग का प्रयोग लागू किया जाना है।

14. *मेसर्स लक्ष्मीरतन इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड बनाम सहायक आयुक्त (न्यायिक) बिक्री कर, कानपुर रेंज, कानपुर और अन्य, एआईआर 1968* एससी 488 के मामले में, इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 के प्रावधानों और इसके तहत बनाए गए नियमों पर विचार किया और धारा 9 के परंतुक की व्याख्या करते हुए, जिसमें अपील दायर करने का तरीका प्रदान किया गया था और आगे यह प्रावधान किया गया था कि मूल्यांकन/स्वीकार किए गए कर की राशि का एक हिस्सा जमा करने पर अपील पर "विचार" किया जा सकता है। प्रश्न इस रूप में उठा कि उक्त संदर्भ में "विचार" (इंटरटेन) शब्द का क्या अर्थ है, कि क्या इसका अर्थ यह है कि कोई अपील प्राप्त नहीं की जाएगी या दायर नहीं की जाएगी या इसका मतलब यह है कि कोई अपील स्वीकार नहीं की जाएगी या सुनी जाएगी और जब तक कि जमा का संतोषजनक प्रमाण उपलब्ध न हो, तब तक कोई अपील स्वीकार नहीं की जाएगी या सुनी जाएगी और उसका निपटान नहीं किया जाएगा। इस न्यायालय ने माना कि शब्दकोश में "विचार" (इंटरटेन) शब्द का अर्थ या तो 'के साथ सौदा करना' था, या 'विचार करने के लिए स्वीकार करें'। हालांकि, अदालत को इस बात पर विचार करना था कि क्या कर की आवश्यक राशि जमा किए बिना अपील का ज्ञापन दाखिल करने या प्राप्त करने की अनुमति नहीं थी या इसे जमा किये बिना सुनवाई और गुण-दोष के आधार पर तय नहीं किया जा सकता था। न्यायालय ने न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 6 में 'दायर या प्राप्त' शब्दों को ध्यान में रखा और माना कि उक्त अधिनियम के संदर्भ में इसका अर्थ होगा 'विचार के लिए स्वीकार करना'। केवल अपील का ज्ञापन दाखिल करना या प्रस्तुत करना या प्राप्त करना महत्वहीन था। प्रावधानों में प्रावधान किया गया है कि दायर की गई अपील को तब तक विचार के लिए स्वीकार नहीं किया जाएगा, जब तक कि आवश्यक कर जमा नहीं किया गया था।

15. *लाला राम बनाम हरि राम, एआईआर 1970 एससी 1093* में, इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 417(4) 1898 (धारा 378 सीआरपीसी के अनुरूप) के प्रावधानों में निहित "विचार" (इंटरटेन) शब्द पर विचार किया, जो बरी करने के आदेश के खिलाफ अपीलकी अनुमति के लिए आवेदन दायर

करने के लिए 60 दिनों की सीमा की अवधि प्रदान करता है। इस प्रकार, यह सवाल उठा कि क्या अपील की अनुमति के लिए आवेदन दाखिल करने/प्रस्तुत करने के लिए 60 दिनों की आवश्यकता है या उस अवधि के भीतर अदालत द्वारा आवेदन की सुनवाई किया जाना चाहिए। इस न्यायालय ने माना कि उस संदर्भ में, "विचार" (इंटरटेन) शब्द का अर्थ है 'दायर या न्यायालय द्वारा प्राप्त' और इसमें अपील की अनुमति के लिए आवेदन की वास्तविक सुनवाई का कोई संदर्भ नहीं था। इसलिए, उस संदर्भ में अपील करने की अनुमति के लिए आवेदन प्राप्त करने या दाखिल करने के लिए "विचार" (इंटरटेन) को समझाया गया था।

16. *हिंदुस्तान कॉमर्सियल बैंक लिमिटेड बनाम पुन्नू साहू (मृत)*, एआईआर 1970 एससी 1384 के माध्यम से, इस न्यायालय ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI नियम 90 के परंतुक में निहित 'विचार' अभिव्यक्ति को निपटाया और इस तर्क को खारिज कर दिया कि यह इसका मतलब कार्यवाही की शुरुआत है और उस चरण में नहीं जब अदालत आवेदन पर विचार करती है, यह अवलोकित करते हुए कि 'विचार' का अर्थ है "निर्णय लेना" या "गुण-दोष के आधार पर विचार करने के लिए आगे बढ़ना"।

17. *मार्टिन एंड हैरिस लिमिटेड बनाम छठा अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और अन्य*, ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 492 में, उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराया, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21 (1) के प्रावधानों से निपटने के दौरान, "विचार"(इंटरटेन) शब्द की व्याख्या योग्यता के आधार पर निर्णय के उद्देश्य के लिए आधारों पर विचार करने के रूप में की गई थी यानी इस प्रकार संज्ञान लिया गया था, सांविधिक प्राधिकरण द्वारा एक आवेदन का। कोर्ट ने खारिज कर दिया यह तर्क कि उक्त वैधानिक प्रावधान में निहित 'विचार' (इंटरटेन) शब्द 'संस्थिति' शब्द का पर्याय था।

18. *जमुना सिंह और अन्य बनाम भदई शाह*, एआईआर 1964 एससी 1541 में, इस न्यायालय ने अभिव्यक्ति 'वाद की संस्थिति' पर विचार व्यक्त किया और अभिनिर्धारित किया कि किसी मामले को न्यायालय में तभी संस्थित किया जा सकता है जब न्यायालय उसमें कथित अपराध का संज्ञान ले। सीआरपीसी की धारा 190 (1) में मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध (अपराधों) का संज्ञान लेने का प्रावधान है। सीआरपीसी की धारा 193 विधिवत अधिकार प्राप्त मजिस्ट्रेट द्वारा वाद के सुपुर्दगी पर सत्र न्यायालयों द्वारा किए जा रहे अपराध (अपराधों) के संज्ञान का प्रावधान करती है।

इस न्यायालय द्वारा इस दृष्टिकोण को *सत्यवीर सिंह राठी, एसीपी एवं अन्य बनाम सीबीआई के माध्यम से राज्य*, (2011) 6 एस सीसी 1. में दोहराया गया है, अनुमोदित किया गया है और इसका पालन किया गया है।

19. इसी तरह के दृष्टिकोण को इस न्यायालय द्वारा दोहराया गया है *कमलापति त्रिवेदी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*, एआईआर 1979 एससी 777 में और कहा कि जब कोई मजिस्ट्रेट अध्याय सोलह के तहत अपना दिमाग लगाता है, तो उसे यह माना जाना चाहिए कि उसने शिकायत में उल्लिखित अपराध का संज्ञान ले लिया है। सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत आदेश पारित करते समय या जांच के उद्देश्य से तलाशी वारंट जारी करते समय ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होगी। *देवरापल्ली लक्ष्मीनारायण रेड्डी और अन्य बनाम वी. नारायण रेड्डी और अन्य*, एआईआर 1976 एससी 1672 में, इस न्यायालय ने माना कि 'संस्थिति' का अर्थ है आरोपपत्र में कथित अपराध का संज्ञान लेना।

20. केवल शिकायत प्रस्तुत करने का अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि मजिस्ट्रेट ने संज्ञान ले लिया है। (द्वारा: नरसिंह दास तापडिया बनाम गोवर्धन दास परतानी और अन्य एआईआर 2000 सुप्रीम कोर्ट 2946).

21. अतः उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में यह सपष्ट है कि "संस्थिति" शब्द को उस अधिनियम की योजना के सन्दर्भ में समझा जाना चाहिए जो किसी विशेष मामले में लागू होता है, जहाँ तक आपराधिक कार्यवाहियों का सम्बन्ध है, "संस्थिति" का अर्थ दाखिल करना, प्रस्तुत करना या कार्यवाही प्रारंभ करना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ दण्ड प्रक्रिया संहिता में निहित प्रावधानों के अनुसार संज्ञान लेना है।

(II) अभियोजन के लिए मंजूरी:

22. सीआरपीसी की धारा 197 के तहत दिया गया संरक्षण जिम्मेदार लोक सेवकों को उन अपराधों के लिए संभावित रूप से कष्टप्रद आपराधिक कार्यवाही की संस्थिति के खिलाफ बचाने के लिए है जो उनके द्वारा लोक सेवकों के रूप में किये गये कार्य या कथित रूप से किए गए कार्य हैं। विधायिका की नीति लोक सेवकों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने की है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि बिना उचित कारण के अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में उनके द्वारा किए गए किसी भी कार्य के लिए उन पर मुकदमा नहीं चलाया जाए, और यदि मंजूरी दी जाती है, तो सरकार को प्रदान किया जाए, यदि वे इसका प्रयोग करना चुनें, अभियोजन पक्ष का पूरा नियंत्रण। इस सुरक्षा की कुछ सीमाएँ हैं और यह केवल तभी उपलब्ध होता है जब लोक सेवक द्वारा किया गया कथित कार्य उचित रूप से उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से जुड़ा हो और केवल आपत्तिजनक कार्य करने का लबादा न हो। अभिव्यक्ति '*आधिकारिक + कर्तव्य*' का अर्थ है कि कार्य या चूक की गई होगी लोक सेवक द्वारा अपनी सेवा के दौरान और यह उसके कर्तव्य के निर्वहन में किया गया होना चाहिए

या चूक जो एक लोक सेवक द्वारा आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए जाते हैं। यदि तथ्यों पर, इसलिए, प्रथम दृष्टया यह पाया गया है कि जिस कार्य या चूक के लिए आरोपी पर आरोप लगाया गया था उचित संबंध था अपने कर्तव्य के निर्वहन के साथ, इसे आधिकारिक माना जाना चाहिए जिसके लिए सीआरपीसी की धारा 197 की प्रयोज्यता पर विवाद नहीं किया जा सकता है।

(देखें: आर. बालकृष्ण पिल्लई बनाम केरल राज्य एवं अन्य, एआईआर 1996 एससीसी 901; एस.के. जुत्शी और अन्य बनाम बिमल देवनाथ और अन्य, एआईआर 2004 एससी 4174; जनहित याचिका केंद्र एवं अन्य। बनाम . भारत संघ और अन्य ए आई आर 2005 एससी 4413; राकेश कुमार मिश्रा बनाम बिहार राज्य और अन्य। एआईआर 2006 एससी 820; अंजनी कुमार बनाम बिहार राज्य और अन्य। एआईआर 2008 एससी 1992; तथा मध्य प्रदेश राज्य बनाम शीतला सहाय और अन्य, (2009) 8 धारा 617)।

23. इस बात की जांच करने के लिए कि क्या किसी कानून के तहत मंजूरी की आवश्यकता है या नहीं, इस पर अपराध का संज्ञान लेते समय विचार किया जाना चाहिए, न कि जांच या अनुसंधान के दौरान। अनुसंधान और अभियोजन में एक उल्लेखनीय अंतर है अभियोजन तब शुरू होता है जब अपराध का संज्ञान लिया जाता है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि संज्ञान अपराध का लिया जाता है, न कि अपराधी का। अनावश्यक उत्पीड़न या अभियोजन से एक लोक सेवक की रक्षा के लिए उपयुक्त प्राधिकारी की मंजूरी आवश्यक है। एक ईमानदार और सच्चे अधिकारी को अपने सार्वजनिक कर्तव्य को ईमानदारी से और अपनी क्षमता के अनुसार पूरा करने के आश्वासन के रूप में इस तरह की सुरक्षा आवश्यक है। अभियोजन की धमकी ईमानदार अधिकारी का मनोबल गिराती है। हालांकि, सार्वजनिक कर्तव्य का पालन अपराध करने के लिए कर्तव्य के रंग के तहत छिपाया नहीं जा सकता है। लोक कर्तव्य लोक सेवक को अपराध करने के लिए एक अवसर प्रदान कर सकता है और इस तरह के मुद्दे की जांच मंजूरी देने वाले प्राधिकारी या न्यायालय द्वारा की जानी आवश्यक है। यह बहुत संभव है कि आधिकारिक क्षमता सार्वजनिक सेवक को अभिलेख में जालसाजी करने या सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करने आदि में सक्षम बना सकती है। ऐसी गतिविधियाँ निश्चित रूप से एक ही लेनदेन के दौरान किए गए अपराध के साथ एकीकृत रूप से जुड़ा या अविभाज्य रूप से जुड़ा नहीं हो सकता है। इस प्रकार, एक लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के कथित निर्वहन में किए गए सभी कार्यों को निश्चित रूप से मंजूरी की आवश्यकता की

सुरक्षात्मक छतरी के नीचे नहीं लाया जा सकता है (द्वारा: *भानुप्रसाद हरिप्रसाद दवे* और *अन्य. बनाम. गुजरात राज्य*, एआईआर 1968 एससी 1323; *हरेराम सत्पथी बनाम टीकाराम अग्रवाल* और *अन्य*, एआईआर 1978 एससी 1568; *महाराष्ट्र राज्य बनाम डॉ. बुद्धिकोटा सुब्बाराव*, (1993) 3 एससीसी 339; *अनिल सरन बनाम बिहार राज्य* और *अन्य*, एआईआर 1996 एससी 204; *शंभू नाथ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* और *अन्य*। एआईआर 1997 एससी 2102; तथा *चौधरी परवीन सुल्ताना बनाम पश्चिम बंगाल राज्य* और *अन्य*, एआईआर 2009 एससी 1404)।

24. वास्तव में, मंजूरी का मुद्दा तब सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न बन जाता है जब किसी लोक सेवक पर आरोप लगाया जाता है कि उसके अधिकार से परे कार्य करना या उसके कृत्यों की शिकायत कर्तव्य की अवहेलना में है। ऐसी स्थिति में, यदि आरोप लगाया जाता है कि वह अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कथित कार्य करते समय अपराध किया है, तो पूर्व स्वीकृति प्रदान करना अनिवार्य हो जाता है। ऐसा है, इस कारण से कि राज्य की शक्ति का निष्पादन भारत के संविधान के अनुच्छेद 166 के अनुसार बनाए गए कार्यकारी कार्य के नियमों के अनुसार इस संबंध में प्राधिकृत कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा किया जाता है, जहां तक कि ऐसी शक्ति का प्रयोग उसके अनुच्छेद 162 के अनुसार किया जाना है। (देखें : *पंजाब राज्य और अन्य बनाम मोहम्मद इकबाल भट्टी*, (2009) 17 एससीसी 92)।

25. *सत्यवीर सिंह राठी*, (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने दिल्ली पुलिस अधिनियम 1978 की धारा 140 के प्रावधानों पर विचार किया, जो बिना मंजूरी के एक पुलिस अधिकारी के ऐसे किसी कर्तव्य या अधिकार का प्रयोग करते हुए कर्तव्य या प्राधिकार के तहत किए गए कार्य के संबंध में किसी भी कथित अपराध में मुकदमे और अभियोजन पर रोक लगाता है और उस पर विचार नहीं किया जाएगा यदि यह कार्य की शिकायत की तारीख के 3 महीने से अधिक समय बाद संस्थित किया गया है। इस संबंध में न्यायालय द्वारा शिकायत पर विचार किया जा सकता है यदि प्रशासक की पूर्व मंजूरी के साथ संस्थित किया गया अपराध की तारीख से एक वर्ष के अन्दर। यह न्यायालय अपने पूर्व के निर्णयों पर विचार करते हुए जिसमें शामिल

हैं जमुना सिंह (सुप्रा); आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एन. वेणुगोपाल और अन्य/ एआईआर 1964 एससी 33; महाराष्ट्र राज्य बनाम नरहर राव, एआईआर 1966 एससी 1783; महाराष्ट्र राज्य बनाम आत्मा राम & अन्य/एआईआर 1966 एससी 1786; तथा प्रो सुमेर चंद्र बनाम भारत संघ और अन्य, (1994) 1 एससीसी 64, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्राथमिकी के आधार पर अभियोजन शुरू किया गया है और यह पुलिस अधिकारी का कर्तव्य था कि वह मामले की जांच करे और यदि आवश्यक हो तो आरोपपत्र दायर करे। अभियुक्त द्वारा शिकायत किए गए कार्य और पुलिस अधिकारी के रूप में उनकी शक्तियां और कर्तव्य के बीच अगर कोई स्पष्ट संबंध है, जिस कार्य की शिकायत की गई है, वह कर्तव्य के रंग के विवरण के भीतर आ सकता है। हालांकि, ऐसे मामले में जहां शिकायत की गई कार्रवाई कर्तव्य के रंग के विवरण में नहीं आती है, दिल्ली पुलिस अधिनियम 1978 की धारा 140 के प्रावधान लागू नहीं होंगे।

26. इस न्यायालय ने उड़ीसा राज्य और अन्य बनाम गणेश चंद्र यहूदी, एआईआर 2004 एससी 2179 में इस मुद्दे से निपटने के दौरान निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: "..... यह अधिनियम की गुणवत्ता है जो महत्वपूर्ण है और इस धारा की सुरक्षा उपलब्ध है यदि कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के दायरे और सीमा के भीतर आता है। यह निर्धारित करने के लिए कोई सार्वभौमिक नियम नहीं हो सकता है कि क्या किए गए कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के बीच उचित संबंध है, और न ही ऐसा कोई नियम निर्धारित करना संभव है। इस संबंध में एक सुरक्षित और निश्चित परीक्षण यह विचार करना होगा कि क्या लोक सेवक की ओर से शिकायत किए गए कार्य को करने के लिए चूक या उपेक्षा उसे अपने आधिकारिक कर्तव्य की अवहेलना के आरोप के लिए जवाबदेह बना सकती थी। यदि इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो यह कहा जा सकता है कि इस तरह का कार्य लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के दौरान किया गया था और शिकायत किए गए कार्य और लोक सेवक के आधिकारिक कर्तव्य से इसका हर संबंध था।" (महत्व दिया गया)

(इन्हें भी देखें: पी. अरुलस्वामी बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1967 एससी 776)

27. सुरेश कुमार भीकमचंद जैन बनाम अजय भूषण पांडे और अन्य, एआईआर 1998 एससी 1524 में इस न्यायालय ने निम्नलिखित के रूप में अभिनिर्धारित किया

"..... धारा 197 की उप-धारा (1) में निहित कानूनी अधिदेश एक मामले में संबंधित सरकार की पूर्व मंजूरी को छोड़कर किसी अपराध का संज्ञान लेने से न्यायालयको रोकता है जहां शिकायत की गई है कि लोक सेवक द्वारा किया गया कार्य अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में या अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कथित रूप से किया गया है और ऐसा लोक सेवक अपने कार्यालय से हटाए जाने योग्य नहीं है, सिवाय इसके कि सरकार की मंजूरी से जो न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर असर डालता है यह कानून द्वारा संज्ञान लेने से लगाया गया एक निषेध है, अभियुक्त को जारी की जा रही प्रक्रिया पर न्यायालय के समक्ष पेश होने के बाद, एक आवेदन द्वारा यह दर्शाया गया है कि धारा 197(1) केवल अपनी त्रुटि को सुधारने के लिए न्यायालय को आकर्षित करती है जहां अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया गया है जो उसके पास नहीं है। ऐसे मामले में अभियुक्त के लिए प्रासंगिक दस्तावेजों और सामग्रियों को प्रस्तुत करने पर कोई रोक नहीं होनी चाहिए, जो वास्तव में स्वीकार्य होंगे, इस प्रश्न के निर्णय के लिए कि क्या इस वाद में वास्तव में धारा 197 का कोई उपयोग है। यह अब विवाद में नहीं है और इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में संकेत दिया गया है कि कार्यवाही के किसी भी चरण में मंजूरी के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। (महत्व दिया गया)

28. माताजोग डोबे बनाम एच.सी. भारी, एआईआर 1956 एससी 44, में इस

न्यायालय की संविधान पीठ ने माना कि कार्यवाही के किसी भी चरण में मंजूरी की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है क्योंकि शिकायत प्रतिरक्षा के प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए सभी तथ्यों का खुलासा नहीं कर सकती है, लेकिन बाद में तथ्य या तो पुलिस के ध्यान में आते हैं या न्यायिक जांच में या यहां तक कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के दौरान, मंजूरी की आवश्यकता को स्थापित कर सकते हैं। विचारण के दौरान मंजूरी की आवश्यकता सामने आ सकती है और अभियुक्त के लिए यह खुला होगा कि वह यह दिखाने के लिए सामग्री को रिकॉर्ड पर रखे कि उसका कर्तव्य क्या था और साथ ही शिकायत किए गए कार्य भी उसके आधिकारिक कर्तव्य से इतने अंतर-संबंधित या अविभाज्य रूप से जुड़े हुए थे ताकि कानून द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा को आकर्षित किया जा सके। कानून अदालत ने आगे कहा कि अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में "कार्य करने या कथित रूप से कार्य करने" के बीच अंतर केवल एक भाषा का है न कि सार का। इस मुद्दे पर कि क्या न्यायालय या कानून के तहत सक्षम प्राधिकारी को मंजूरी

की आवश्यकता पर निर्णय लेना है, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:
उन्होंने कहा,

'मंजूरी दी जानी है या नहीं, यह सरकार को विचार करने का विषय है। सरकार को दी गई मंजूरी को प्रदान करने या रोक सकने की पूर्ण शक्ति न्यायालय पर डाले गए कर्तव्य के लिए अप्रासंगिक और विदेशी है, जो कार्य की वास्तविक प्रकृति का पता लगाना है। वहाँ कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कार्य उससे अधिक है जो कर्तव्य के निर्वहन के लिए कड़ाई से आवश्यक है, क्योंकि यह प्रश्न केवल बाद के चरण में उठेगा जब मुकदमा गुण-दोष के आधार पर आगे बढ़ेगा। हमें यह पता लगाना चाहिए कि क्या अधिनियम और आधिकारिक कर्तव्य इतने परस्पर संबंधित हैं कि कोई यथोचित रूप से यह मान सकता है कि यह अभियुक्त द्वारा किया गया था आधिकारिक कर्तव्य के पालन में, हालांकि संभवतः स्थिति की जरूरतों और आवश्यकताओं से अधिक में। (महत्व दिया गया)

29. शंकरन मोड़त्रा बनाम साधना दास और अन्य, एआईआर 2006 एससी 1599 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"उच्च न्यायालय ने कहा है कि अत्यधिक बल प्रयोग से किसी व्यक्ति की हत्या करना कभी भी कर्तव्य का पालन नहीं हो सकता। जहां तक यह जाता है, यह सही हो सकता है। लेकिन सवाल यह है कि क्या वह कार्य कर्तव्य पालन में किया गया था या कर्तव्य के कथित पालन में। यदि यह कर्तव्य के पालन या कर्तव्य के कथित पालन में किया गया था, तो संहिता की धारा 197(1) को यह तर्क देकर दरकिनार नहीं किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति की हत्या कभी भी आधिकारिक क्षमता में नहीं की जा सकती है और परिणामस्वरूप संहिता की धारा 197(1) आकर्षित नहीं हो सकता"

(यह भी देखें: रिजवान अहमद जावेद शेख और अन्य. बनाम जमाल पटेल और अन्य, एआईआर 200'1 एससी 2198)।

30. एस.बी. साहा और अन्य बनाम एम.एस. कोचर, एआईआर 1979 एससी 1841 में, इस न्यायालय ने इस मुद्दे को विस्तार से निपटाया और समझाया "आधिकारिक" का अर्थ जो सीआरपीसी की धारा 197, के प्रावधानों में निहित है

अवलोकन करते हुए:

"इस सवाल पर विचार करते हुए कि क्या अभियोजन के लिए मंजूरी

आवश्यक था या नहीं था, ये आपराधिक कृत्य आरोपियों के लिए जिम्मेदार ठहराए जाने पर आरोप लगाया जाना चाहिए, संहिता की धारा 197(1) में प्रयुक्त शब्द 'अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कथित रूप से कार्य करते समय उसके द्वारा किए गए कथित कोई अपराध' एक संकीर्ण और साथ ही एक विस्तृत व्याख्या करने में सक्षम हैं। यदि इन शब्दों का अर्थ बहुत संकीर्ण लगाया जाता है, तो धारा पूरी तरह से बाँझ बना दी जायेगी, क्योंकि, 'अपराध करना आधिकारिक कर्तव्य का कोई हिस्सा नहीं है, और न ही कभी हो सकता है'। व्यापक अर्थों में, ये शब्द एक अपराध का गठन करने वाले, हर कार्य को अपनी छत्रछाया में ले लेंगे किया गया जो उसी कार्यवाही के दौरान जिसमें आधिकारिक कर्तव्य का पालन किया जाता है या कथित रूप से पालन किया जाता है। इन शब्दों के आयात के लिए सही दृष्टिकोण दो चरम सीमाओं के बीच है। जबकि एक ओर, यह एक लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के पालन में किये हुए प्रत्येक अपराध नहीं है जो धारा 197 (1) के संरक्षण का हकदार है, किसी अपराध का गठन करने वाले कार्य जो सीधे और उचित रूप से उसके आधिकारिक कर्तव्य से जुड़ा हुआ है, को उक्त प्रावधान के साथ अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता होगी।"

31. *प्रकाश सिंह बादल और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य*। एआईआर 2007 एससी 1274 के मामले में इस न्यायालय ने उसी दृष्टिकोण को दोहराया "आधिकारिक कर्तव्य" वाक्यांश की व्याख्या करते हुए, निम्नानुसार है:

"... इसलिए आधिकारिक कर्तव्य का तात्पर्य है कि कार्य या चूक लोक सेवक द्वारा अपनी सेवा के दौरान की गई होनी चाहिए और इस तरह के कार्य या चूक को कर्तव्य के हिस्से के रूप में भी किया जाना चाहिए जो आगे प्रकृति में आधिकारिक होना चाहिए। इस प्रकार, सेवा के दौरान किसी भी कार्य या चूक के लिए इसकी प्रयोज्यता का निर्धारण करते समय इस धारा को सख्ती से समझा जाना चाहिए। इसका संचालन उन कर्तव्यों तक सीमित होना चाहिए जो सी ड्यूटी के दौरान निर्वहन किए जाते हैं। लेकिन एक बार जब यह पाया जाता है कि कोई कार्य या चूक किसी लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्य के निर्वहन में की गई है, तो इसे उदार और व्यापक बनाया जाना चाहिए, जहां तक इसकी आधिकारिक प्रकृति का संबंध है। "

32. *पी.के. चौधरी बनाम कमांडर 48 बीआरटीएफ (जीआरईएफ)*, (2008) 13 एससीसी 229, माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस मामले की जांच की थी जिसमें सेना के एक अधिकारी आईपीसी की धारा 166 के तहत दंडनीय अपराध में कथित रूप से संलिप्त था किसी व्यक्ति को चोट पहुंचाने के इरादे से लोक सेवक द्वारा कानून

की अवहेलना करना और आईपीसी की धारा 167 लोक सेवक द्वारा किसी भी व्यक्ति को चोट पहुंचाने के इरादे से गलत दस्तावेज तैयार करना और क्या ऐसी स्थिति में सीआरपीसी की धारा 197 के तहत मंजूरी की आवश्यकता थी। न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया: "चूंकि दंड संहिता की धारा 166 और 167 के तहत अपराधों का एक लोक सेवक की ओर से आपराधिक कदाचार के कृत्य के साथ सीधा संबंध है, निर्विवाद रूप से विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा अपीलकर्ता को समन जारी करने से पहले मंजूरी का एक आदेश पूर्व शर्त था। न्यायालय ने माना कि यदि सक्षम प्राधिकारी यह निर्णय लेता है कि अभियुक्त पर साधारण आपराधिक न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाना है, तो सीआरपीसी के प्रावधान लागू होंगे, जिसमें परिसीमा का कानून भी शामिल है और आपराधिक अदालत अपराध का संज्ञान नहीं ले सकती है यदि इसे सीमा द्वारा प्रतिबंधित किया जाता है। यदि देरी माफ नहीं होती है, न्यायालय के पास संज्ञान लेने का कोई अधिकार नहीं होगा। इसी तरह, जब तक यह नहीं माना जाता है कि मंजूरी प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी, तब तक अदालत का अधिकार क्षेत्र वर्जित रहेगा।

33. यह न्यायालय *नागराज बनाम मैसूर राज्य* एआईआर 1964 एससी) 269 में, अभिनिर्धारित किया कि:

"विचार करने के लिए अंतिम सवाल यह है कि यदि न्यायालय किसी भी स्तर पर इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि *सरकार की मंजूरी के बिना अभियोजन स्थापित नहीं किया जा सकता था*, तो किस प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए इसके द्वारा, अर्थात्, क्या न्यायालय को अभियुक्त को आरोपमुक्त कर देना चाहिए *या उसके खिलाफ तय किए जाने वाले आरोप से उसे बरी कर देना चाहिए या कार्यवाही को छोड़ देना चाहिए* और संहिता के तहत अभियोजन के *मामले* में विचार के अनुसार आरोपमुक्त करने या बरी करने का कोई औपचारिक आदेश पारित नहीं करना चाहिए/उच्च न्यायालय ने कहा है कि जब सत्र न्यायाधीश संतुष्ट हो जाते हैं कि *साबित तथ्य मामले को संहिता की धारा 132 की शरारत के भीतर लाते हैं*। तब वह शिकायत को अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र है, यह कहते हुए कि यह उस *धारा द्वारा वर्जित है*। हम इसे उन परिस्थितियों में निष्पादित होने का सही आदेश मानते हैं। यह नहीं आवश्यक है कि न्यायालय को एक औपचारिक आदेश पारित करना चाहिए *आरोपी को आरोपमुक्त करना या बरी करना*। वास्तव में ऐसा कोई नहीं आदेश

पास किया जा सकता है। यदि धारा 132 लागू होती है, तो सरकार की स्वीकृति के बिना शिकायत दर्ज नहीं की जा सकती थी।

इस तरह की शिकायत पर दर्ज कार्यवाही शून्य होगी, उन कार्यवाहियों को लेने के लिए न्यायालय का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है जब कार्यवाही शून्य हो, न्यायालय कोई आदेश पारित करने के लिए सक्षम नहीं है, सिवाय इसके कि कार्यवाही को छोड़ दिया जाए और शिकायत को अस्वीकार कर दिया जाए" (महत्व दिया गया)

34. नागा पीपुल्स मूवमेंट ऑफ ह्यूमन राइट्स बनाम भारत संघ, एआईआर 1998 एससी 431, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1958 की धारा 6 के प्रावधान, के तहत शामिल मुद्दे से निपटने के दौरान निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

"धारा 6 के तहत केन्द्रीय अधिनियम के अधीन कार्य करने वाले व्यक्तियों के संबंध में सुरक्षा प्रदान की गई है और यह निर्धारित किया गया है कि उक्त अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किए गए या किए जाने वाले किसी भी कार्य के संबंध में किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई अभियोजन, वाद या अन्य विधिक कार्यवाही शुरू नहीं की जाएगी, सिवाय इसके कि केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी के साथ। ऐसे प्रदान संरक्षण को इस आधार पर हमला किया गया है कि यह वस्तुतः धारा 4 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों को प्रतिरक्षा प्रदान करता है क्योंकि यह " इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए कथित रूप से किये गये किसी भी चीज के लिए सुरक्षा प्रदान करता है" यह प्रस्तुत किया गया है कि सशस्त्र बलों के सदस्यों को गिरफ्तारी और अभियोजन से पर्याप्त सुरक्षा सीआरपीसी की धारा 45 और 197 में निहित है और आगे सुरक्षा देने वाला एक अलग प्रावधान है के लिए नहीं बुलाया गया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि भले ही अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान की जाती है, तो प्रश्नगत व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 76 और 79 के तहत आपराधिक कार्यवाही में वैधानिक बचाव की मांग कर सकता है। हमारे विचार से, धारा 6 के तहत दी गई सुरक्षा केन्द्रीय अधिनियम के तहत शक्तियों का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के बचाव के लिए प्रदत्त नहीं मणि जा सकती है।

धारा 6 केवल केंद्र सरकार द्वारा पूर्व मंजूरी के रूप में सुरक्षा प्रदान करती है ऐसे व्यक्ति के खिलाफ आपराधिक अभियोजन या एक मुकदमा या अन्य सिविल कार्यवाही संस्थित करने से पहले / जहां तक इस तरह की अभियोजन के खिलाफ सुरक्षा का संबंध है, यह प्रावधान सीआरपीसी की धारा 197 में निहित के समान है, जिसमें एक लोक सेवक द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध को शामिल किया गया है, "जबकि वह अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करता है या कथित रूप से कार्य करता है। धारा 6 केवल इस मामले में इस सुरक्षा का विस्तार करता है

किसी वाद या अन्य कानूनी कार्यवाही की संस्थिति की।

XX

XX

XX

ताकि लोग आश्वस्त महसूस कर सकें कि सशस्त्र बलों के सदस्यों द्वारा शक्तियों के दुरुपयोग या दुरुपयोग के खिलाफ एक प्रभावी जांच है यह आवश्यक है कि केन्द्रीय अधिनियम के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों के दुरुपयोग अथवा दुरुपयोग के आरोप वाली शिकायत की पूरी तरह से जांच की जानी चाहिए और यदि यह पाया जाता है कि आरोप में दम है, तो पीड़ित व्यक्ति को राज्य द्वारा उपयुक्त रूप से मुआवजा दिया जाना चाहिए और केन्द्रीय अधिनियम की धारा 6 के तहत अपेक्षित मंजूरी अभियोजन और/या सिविल वाद या अन्यकार्यवाही की संस्थिति के लिए दी जानी चाहिए इस तरह के उल्लंघन के लिए जिम्मेदार व्यक्ति/व्यक्तियों के खिलाफ ।" (महत्व दिया गया)

35. जमीरुद्दीन अंसारी बनाम केन्द्रीय अनुसंधान ब्यूरो और अन्य, (2009) 6 एससीसी 316, में यह न्यायालय महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 (इसके बाद 'मकोका' कहा जाता है) के प्रावधान पर विचार के दौरान यह अभिनिर्धारित किया कि:

"जैसा कि यहां ऊपर बताया गया है, धारा 23 के प्रावधान अधिनियम के प्रावधानों के आह्वान के खिलाफ प्रदान किए गए सुरक्षा उपाय हैं जो बेहद कड़े हैं और सामान्य आपराधिक कानून के प्रावधानों से बहुत दूर हैं। यदि, जैसा कि कुछ उत्तरदाताओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है, तो यह धारा 23 की कठोरता के अधीन नहीं, तो इस तरह के सुरक्षा उपायों को लागू करने का उद्देश्य ही अपना उद्देश्य खो देता है। साथ ही, चूंकि मकोका की धारा 9(1) के तहत एक निजी शिकायत दर्ज करने पर भी विचार किया जाता है, इसलिए इसे समाप्त करने के

लिए इसे धारा 23 की कठोरता के अधीन भी होना चाहिए। तदनुसार, अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (2) के तहत लगाए गए प्रतिबंध को ध्यान में रखते हुए, विद्वान विशेष न्यायाधीश को सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत एक निजी शिकायत पर अलग से जांच कर संज्ञान लेने से रोका जाता है धारा 23(2) का प्रतिबन्ध शिकायतों के संबंध में बने रहना जारी रखता है, या तो निजी प्रकृति या पुलिस रिपोर्ट पर। मकोका की धारा 9(1) और धारा 23 के प्रावधानों को सामंजस्यपूर्ण निर्माण देने के लिए, ऐसी निजी शिकायत प्राप्त होने पर विद्वान विशेष न्यायाधीश को इसे धारा 23 की उप-धारा (1) के खंड (ए) में इंगित अधिकारी को भेजना होगा ताकि उप-धारा (1) के खंड (बी) में इंगित पुलिस अधिकारी द्वारा शिकायत की जांच की जा सके और उसके बाद ही शिकायत किए गए अपराध का संज्ञान लिया जा सके। यदि धारा 23 की उपधारा (2) के तहत ऐसे अपराध का संज्ञान लेने के लिए विशेष न्यायालय को मंजूरी दी जाती है। (महत्व दिया गया)

36. हरपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2007) 13 एससीसी 387 में यह न्यायालय आतंकवादी और विघटनकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 (इसके बाद टाडा कहा जाएगा)की धारा 20ए (2)के प्राविधान का निपटान करते हुए निम्नवत अभिनिर्धारित किया है:

"महत्वपूर्ण बात यह है कि अभियोजन ने अपीलकर्ता के अभियोजन के लिए पुलिस महानिरीक्षक या पुलिस आयुक्त की मंजूरी नहीं ली किसी भी स्तर पर टाडा के तहत जो टाडा की धारा 20-ए(2) के अंतर्गत आवश्यक है। नामित न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता का विचारण बिना पुलिस महानिरीक्षक या पुलिस आयुक्त की मंजूरी के आगे बढ़ा। पूर्व स्वीकृति के अभाव में

नामित न्यायालय के पास टाडा के तहत अपराध का संज्ञान लेने या अपीलकर्ता के विचारण को आगे बढ़ाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। (महत्व दिया गया)

37. रामभाई नाथाभाई गढ़वी एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य

एआईआर 1997 एससी 3475, में इस न्यायालय ने टाडा के समान प्रावधानों से निपटते हुए अभिनिर्धारित किया कि:

"... इस प्रकार अभियोजन एजेंसी को न्यायालय से संपर्क करने में सक्षम बनाने के लिए एक वैध मंजूरी अनिवार्य शर्त है जो न्यायालय को टाडा के

तहत अपराध का संज्ञान लेने में सक्षम बनाता है जैसा कि रिपोर्ट में खुलासा किया गया है। इसका परिणाम यह है कि, यदि वे वैध मंजूरी नहीं थे, तो नामित न्यायालय को रिपोर्ट में उल्लिखित किसी भी व्यक्ति के खिलाफ मामले की सुनवाई करने का कोई अधिकार नहीं मिलता है क्योंकि न्यायालय को इस तरह की मंजूरी के बिना अपराध का संज्ञान लेने से मना किया गया है। यदि नामित न्यायालय ने वैध मंजूरी के बिना अपराध का संज्ञान लिया है, इस तरह की कार्रवाई अधिकार क्षेत्र के बिना है और इसके तहत अपनाई गई कोई भी कार्यवाही भी अधिकार क्षेत्र से बाहर होगी।

38. हिमांचल प्रदेश राज्य बनाम एम.पी. गुप्ता, (2004) 2 एससीसी 349 में यह न्यायालय मुद्दे का निपटान करते हुए निम्नवत अभिनिर्धारित किया: "नहीं" और "करेगा" शब्दों का उपयोग यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करता है कि किसी भी अपराध का संज्ञान लेने के लिए न्यायालय की शक्ति के प्रयोग पर रोक पूर्ण और पूर्ण है। संज्ञान ही वर्जित है। यानी शिकायत पर संज्ञान नहीं लिया जा सकता है। "(जोर दिया गया)

39.. व्यापक और अक्षरशः अर्थों में 'संज्ञान' का अर्थ है सीआरपीसी की धारा 190 के तहत आवश्यक अपराध का नोटिस लेना। 'संज्ञान' उस बिंदु को इंगित करता है जब अदालत पहली बार किसी अपराध का न्यायिक नोटिस लेती है। अदालत न केवल शिकायत/पुलिस रिपोर्ट की सामग्री पर अपना ध्यान लगाती है, बल्कि उस तरीके से भी आगे बढ़ती है जैसा कि सीआरपीसी के अध्याय XIV के बाद के प्रावधानों में दर्शाया गया है।

(द्वारा: आरआर चरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1951 एससी 207, और पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम मो. खालिद और अन्य, (1995) 1 एससीसी 684)।

40. डॉ. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम डॉ. मनमोहन सिंह और अन्य, एआईआर 2012 एससी 1185 के मामले में इस न्यायालय ने मुद्दे पर विस्तार से विचार किया और 'संज्ञान' शब्द का अर्थ समझाया

जो निम्नानुसार है:

"कानूनी भाषा में संज्ञान का अर्थ है 'कानून की अदालत द्वारा न्यायिक नोटिस लेना', अधिकार क्षेत्र रखना, किसी कारण पर या प्रस्तुत किया गया मामला इसके आगे ताकि यह तय किया जा सके कि क्या कार्यवाही शुरू करने और निर्धारण करने के लिए कोई आधार है, न्यायिक रूप से कारण या मामले का। (महत्व दिया गया)

(यह भी देखें: भूषण कुमार बनाम राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र),
(2012) 4 स्केल 191)

41. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पारसनाथसिंह, (2009) एसईसी 372 में, इस न्यायालय ने शब्द "संज्ञान लेना ही वर्जित है" का अर्थ समझाया ऐसे कि शिकायत पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है या विचारण और विवादक का निर्धारण करने के लिए अधिकार क्षेत्र या अधिकार क्षेत्र या शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। आम बोलचाल में इसका मतलब है सूचना का लेना। इसलिए, अदालत को एक शिकायत लेने या अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से रोक दिया गया है यदि यह एक लोक सेवक के संबंध में है जो एक अपराध का आरोपी है जो कथित रूप से अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के दौरान किया गया है।

42. सीआरपीसी में सुसंगत प्रावधान इस प्रकार हैं:

"45 (1) - धारा 41 से 44 (दोनों समावेशी) में निहित किसी भी बात के बावजूद , संघ के सशस्त्र बलों का कोई सदस्य अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में उसके द्वारा किए गए या कथित रूप से किए जाने वाले किसी भी काम के लिए गिरफ्तार नहीं किया जाएगा, केंद्रीय सरकार की सहमति प्राप्त करने के बाद को छोड़कर।

197(2)- कोई भी न्यायालय संघ के सशस्त्र बलों के किसी सदस्य द्वारा किए गए कथित किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा जो अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य किया गया है या कथित रूप से किया गया है सिवाय इसके कि केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी।"

अधिनियम 1990 की धारा 7, सेना के जवान द्वारा अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए अच्छे विश्वास के साथ किसी भी किए गए या कथित रूप से किए गए कार्य के संबंध में शिकायतकर्ता/अनुसंधान एजेंसी/ पीड़ित व्यक्ति द्वारा मुकदमा , अभियोजन आदि दायर करने के लिए प्रतिबंध लगाती है,

केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी को छोड़कर ।

43. तीन अभिव्यक्तियाँ अर्थात् 'सिवाय', 'सद्भावना' और "कथित" उपर्युक्त उपबंध में निहित के लिए स्पष्टीकरण/विस्तार की आवश्यकता है।

(i) सिवाय: छोड़ने या बाहर निकालने के लिए: बाहर करना; छोड़ दें; सहेजें शामिल नहीं; जब तक। इस शब्द का अर्थ तब तक भी लगाया गया है।

अपवाद - किसी संख्या को छोड़ने या बाहर करने का कार्य नामित या विवरण से; वह जो विवरण के एक सामान्य नियम में दूसरों से अलग या अलग किया गया है; एक व्यक्ति , चीज, या मामला जो अलग या शामिल नहीं के रूप में निर्दिष्ट है; उल्लेख को छोड़कर, उल्लेख से हटाने या विचार से बाहर छोड़ने का कार्य।

- (ii) तात्पर्य: तात्पर्य का अर्थ है, विशेष रूप से जानबूझकर, अस्तित्व की उपस्थिति को प्रस्तुत करना; दावा या दावा, अक्सर झूठा। इसका अर्थ है अक्सर बाहरी रूप से व्यक्त करना, संकेत देना, संकेत देना या दावा करना झूठा। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ है तरीके या उपस्थिति से दावा करना (एक निश्चित चीज होने के लिए, आदि); दिखाने का इरादा; औसत; इरादा करना।

तात्पर्य का अर्थ 'कथित' भी होता है। "कथित रूप से" - जब एक निश्चित प्रभाव के लिए कुछ "कथित रूप से" करने की शक्ति दी जाती है, तो यह अधिनियम की वैधता के खिलाफ आपतियों को रोकने के लिए प्रतीत होता है जो अन्यथा उठाया जा सकता है। इस प्रकार जब किसी शक्ति के अनुसरण में किए जाने वाले किसी भी "कथित रूप से" किये कार्य को वैधता दी जाती है, इसके तहत किए गए किसी भी काम की वैधता हो सकती है, हालांकि यह ऐसे समय में किया जाता है जब शक्ति वास्तव में प्रयोग करने योग्य नहीं होती है। (डिकर बनाम एंगरस्टीन, 3 सीएच डी 600)

' कथित रूप से किया जाना ' - इसमें उस कार्य की प्रकृति में कुछ होना चाहिए जो इसे उसके आधिकारिक चरित्र से जोड़ती है।

भले ही कार्य है कानून द्वारा न्यायोचित या अधिकृत नहीं, वह अभी भी अपने कर्तव्य का निष्पादन करने में किया गया कार्य माना जायेगा अगर वह इसके बारे में गलत दृष्टिकोण पर कार्य करता है। तो इसका मतलब है कि कुछ कमी या गलत है: सब कुछ वैसा नहीं है जैसा होना चाहता है।

अजीमुन्निसा और अन्य बनाम उप अभिरक्षक, खाली संपत्तियां, जिला देवरिया और अन्य। एआईआर 1961 एससी 365 में, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने

अभिनिर्धारित किया: "'तात्पर्य' शब्द के अर्थ के कई रंग हैं। इसका मतलब है कि काल्पनिक, जो दस्तावेज के चेहरे पर दिखाई देता है; स्पष्ट और कानूनी आयात नहीं और इसलिए कोई भी कार्य जो शक्ति के प्रयोग में किया जाना चाहता है, को उस शक्ति के भीतर किया जाना माना जाना चाहिए, भले ही वह शक्ति प्रयोग के योग्य नहीं है... इसलिए तात्पर्य है यह संकेत देता है कि इसके चेहरे पर क्या दिखाई देता है या स्पष्ट है, भले ही कानून में ऐसा नहीं हो सकता है।" (महत्व दिया गया)

(यह भी देखें: *हाजी सिद्दीक हाजी उमर और अन्य बनाम भारत संघ*, एआईआर 1983 एससी 259)।

(iii) **सद्भावना:**

44. एक लोक सेवक का नैतिक और कानूनी दायित्व है कि वह सच्चाई, ईमानदारी, सम्मान, निष्ठा और विश्वास के साथ अपना कर्तव्य निभाए आदि। उसे कार्यालय और पद की प्रकृति के अपेक्षा के अनुसार अपना कर्तव्य निभाना है इस कारण से कि उसे सौंपे गए कर्तव्य को पूरा करने के लिए कानून और अधिकार का सम्मानजनक पालन करना है। अच्छे विश्वास को परिभाषित किया गया है सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 3(22) में इसका अर्थ एक ऐसी बात है जो वास्तव में ईमानदारी से की जाती है, क्या यह की गई है लाला परवाही से या नहीं। उचित देखभाल और ध्यान, के साथ किया गया कुछ भी जो दुर्भावनापूर्ण नहीं है, माना जाता है कि यह अच्छे विश्वास में किया गया है। व्यक्तिगत दुर्भावना या द्वेष नहीं होना चाहिए, बदनाम करने और बदनाम करने के लिए कोई इरादा नहीं होना चाहिए। सद्भावना और सार्वजनिक भलाई हालांकि तथ्य का प्रश्न है, इसे गवाही प्रस्तुत कर साबित करने की आवश्यकता है (द्वारा: *माधवराव नारायणराव पटवर्धन बनाम राम कृष्ण गोविंद भानु और अन्य*, एआईआर 1958 एससी 767; *माधव राव सिंधिया बहादुर आदि बनाम भारत संघ और अन्य*, एआईआर 1971 एससी 530; *सेवाक्रम सोभानी बनाम आर.के. करंजिया, मुख्य संपादक, वीकली ब्लिट्ज और अन्य*, एआईआर 1एच81 एससी 1514; *विजय कुमार रम्पा और अन्य बनाम दीवान देवी और अन्य*, एआईआर 1985 एससी 1669; *दीना (मृत) एलआरएस बनाम भरत सिंह (मृत) के माध्यम से एलआरएस के माध्यम से। और अन्य*, (2002) 6 धारा 336; और *गुंडला वेंकटेश्वरलू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य अन्य*, (2008) 9 धारा 613)।

बृजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य। एआईआर 1981 एससी 636, में इस न्यायालय ने इस मुद्दे से निपटते हुए अभिनिर्धारित किया :

"..... अभिव्यक्ति के कई अर्थ हैं। लोकप्रिय अर्थों में, वाक्यांश 'अच्छे विश्वास में' का सीधा सा अर्थ है "ईमानदारी से, धोखाधड़ी, मिलीभगत या धोखे के बिना; वास्तव में, वास्तव में, बिना दिखावे के और धोखाधड़ी या अन्यथा गैरकानूनी योजना को आगे बढ़ाने में सहायता या कार्य करने के इरादे के बिना।" (देखें शब्द और वाक्यांश, स्थायी संस्करण, भाग 18ए पृष्ठ 91)। यद्यपि "सद्भावना" का अर्थ विभिन्न विधियों, विषयों और स्थितियों के संदर्भ में भिन्न हो सकता है, धोखाधड़ी या धोखाधड़ी के दाग से मुक्त ईमानदार इरादा, इसके अर्थ का एक निरंतर तत्व है। फिर भी, 'सद्भावना' का गठन करने के लिए आवश्यक ईमानदारी की गुणवत्ता और मात्रा उस कानून के संदर्भ और उद्देश्य से निर्धारित होती है जिसमें यह शब्द नियोजित किया गया है। कि यह निर्माण का एक मुख्य सिद्धांत है कि एक अभिव्यक्ति जिसका कोई समान, सटीक रूप से निश्चित अर्थ नहीं है, उसका

रंग, प्रकाश और सामग्री संदर्भ से होती है”

45. उपरोक्त एक कर्तव्य से जुड़ी विशेषताओं को एक निजी कार्य से समझने का प्रयास किया जा सकता है जो गुप्त हो सकता है या रहस्यमय। एक अधिकृत कार्य या कर्तव्य आधिकारिक है और प्राधिकरण के संबंध में है। इस प्रकार, यह कुछ छिपा हुआ या गैर-पारदर्शी होने का जोखिम नहीं उठा सकता है जब तक कि इस तरह के कर्तव्य को आधिकारिक रहस्य अधिनियम जैसे किसी कानून के तहत संरक्षित नहीं किया जाता है।
46. अच्छा विश्वास में कार्य करते हुए कर्तव्य का पालन में सुसंगत प्राविधानों के तहत प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में किया गया कार्य या कथित रूप से किया गया कार्य बचाव खण्ड से सुरक्षित है या नहीं। प्रथम बिंदु दिमाग में ये रखना है कि ऐसा उठाया गया मुद्दा प्रत्येक वाद के तथ्यों पर निर्भर करेगा और किसी परिकल्पना का विषयवास्तु नहीं हो सकता है, कारण है, ऐसे मामले एक लोक अधिकारी के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही प्रारम्भ करने से सम्बंधित है जिसने एक सांविधिक प्रावधान के तहत प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में उसने कार्य किया है या कथित रूप से कोई कार्य किया है। इसलिए प्रत्येक वाद के तथ्य एक आधिकारिक कार्य के तत्वों को निर्धारित करने के लिए आवश्यक होते हैं। कार्य आधिकारिक होना चाहिए और निजी नहीं होना चाहिए क्योंकि यह इसे उस तरीके से अलग किया जाना चाहिए जिस तरह से इसे प्रशासित या निष्पादित किया गया है।
47. फिर इस तरह के कर्तव्य को अच्छे विश्वास में निभाने का मुद्दा आता है। 'सद्भावना' का अर्थ है जो उचित विश्वास पर आधारित है और एक वफादार पालन का आदेश देता है। कार्य जो विश्वसनीय प्राधिकार के आधार पर आगे बढ़ता है और सत्य के रूप में स्वीकार होता है उसे अच्छा विश्वास में कहा जाता है। यह धोखा देने के इरादे के विपरीत है। अच्छे विश्वास में किया गया एक कर्तव्य एक अधिकारी में किए गए विश्वास को पूरा करना है और जो उच्च अधिकारी के प्रति निष्ठा रखता है। ऐसा कर्तव्य इरादे से ईमानदार होना चाहिए, और पेशेवर निष्पादन में ईमानदार। यह इस तरह के एक आकलन के आधार पर है कि एक कार्य को सद्भावना में माना जा सकता है, जिसके लिए किसी मामले का

निर्णय करते समय रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

48. आम तौर पर जो आरोप लगाए जाते हैं, वे यह हैं कि कार्य किसी भी वैध कर्तव्य निर्वहन के लिए पता लगाने योग्य नहीं था। यह अपने आप में यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि कर्तव्य बुरे विश्वास में किया गया था। यही कारण है कि सांविधिक प्रावधानों में जो कानून प्रवर्तन अधिकारियों को शक्तियां प्रदान करते हैं उन्हें प्रतिरक्षा खण्ड में शामिल किया गया है। यह उन्हें इस अवधारणा पर सुरक्षा प्रदान करने के लिए है कि अच्छे विश्वास में किये गये कार्य द्वेष या दुर्भावना से स्वतंत्र हैं। यह प्रतिरक्षा एक प्रकार की स्वतंत्रता है जो अधिकारियों को उनके आधिकारिक कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन करते समय छुट के रूप में प्रदान की जाती है। अधिकारी द्वारा इस तरह से किये गये कार्य या कर्तव्य उसके प्राधिकार या पद के कारण क्षमा किये जाता है।

49. यही कारण है कि किसी शिकायत का आंकलन या प्रतिरक्षा के खिलाफ मंजूरी देने के लिए आवश्यक तथ्यों का आंकलन यह पता लगाने के लिए घटनाओं की श्रृंखला की जांच की जानी चाहिए कि क्या यह कार्य कर्तव्यनिष्ठ और सद्भावना से किया गया है और दुर्भावनापूर्ण प्रेरित नहीं है। यह कार्य करने का इरादा है जो महत्वपूर्ण है।

50. प्राधिकरण के तहत कुछ करने का अचानक निर्णय या ऐसे अधिकार का कथित प्रयोग जरूरी नहीं हो सकता है उस उद्देश्य को छोड़कर पूर्व निर्धारित जिसके लिए अधिकारी पूरा करने के लिए आगे बढ़ता है। उदाहरण के लिए, छापा मारते समय किसी अधिकारी को हमले की आशंका नहीं हो सकती है, लेकिन अपने आधिकारिक कर्तव्य का पालन करते समय उसे अपराधियों और बेईमान व्यक्तियों के हाथों ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है। अधिकारी अपने बचाव में एक कर्तव्य का पालन कर सकता है जो कुछ गलत गणना या गलत जानकारी के कारण हो सकता है, लेकिन इस तरह के कर्तव्य को बुरे विश्वास में एक कार्य के रूप में लेबल नहीं किया जा सकता है जब तक कि यह सकारात्मक सामग्री द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जाता है, विशेष रूप से कि कार्य व्यक्तिगत उद्देश्यों से दूषित था और इससे किसी भी आधिकारिक कर्तव्य का निर्वहन जुड़ा नहीं था। इस प्रकार, एक कार्य जो गलत प्रतीत हो सकता है या एक निर्णय जो गलत प्रतीत हो सकता है, आवश्यक रूप से एक दुर्भावनापूर्ण कार्य या निर्णय नहीं है। इसलिए अच्छे विश्वास की धारणा को केवल ठोस और ठोस सामग्री द्वारा ही हटाया जा सकता है और जब तक इस तरह का

निष्कर्ष नहीं निकाला जाता है, सद्भावना में एक कर्तव्य को यह माना जाना चाहिए कि कानून के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किया गया था या कथित रूप से किया गया था।

51. किसी कार्य के पीछे अनुचित उद्देश्य को जोड़ने या आरोपित करने के लिए पर्याप्त सामग्री होना आवश्यक है, तभी प्रतिरक्षा खण्ड को हटाया जा सकता है। इसी कारण जब कोई सक्षम प्राधिकारी अनुमति देने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर रहा होता है, तो उसे अनुमति देने का आदेश पारित करने से पहले शिकायत से सम्बंधित घटना के सभी महत्वपूर्ण तथ्यों पर विचार करना चाहिए। अन्यथा, भले ही कोई अधिकारी अपने कर्तव्य का इमानदारी और सद्भावना से पालन करे, उसका आधिकारिक कर्तव्य हमेशा खतरे में पड़ सकता है।

52. यह उपरोक्त पृष्ठभूमि में है कि हम रिकॉर्ड करना चाहते हैं कि एक अधिकारी को दी गई सुरक्षा और प्रतिरक्षा विशेष रूप से अधिनियम 1990 के उपबंधों में या इसी तरह के अधिनियमों में शिकायत किए गए कार्य का आकलन करने के लिए व्यापक रूप से समझा जाना चाहिए। इसमें गलत पहचान जैसे मामलों का आंकलन भी शामिल होगा या वास्तविक संदेह के आधार पर किया गया कार्य। इसलिए हमारा मानना है कि इस तरह के प्रतिरक्षा खंडों को अच्छे विश्वास में कर्तव्यों के आधिकारिक निर्वहन को बनाए रखने के लिए मंजूरी देने वाले प्राधिकारी को व्यापक विवेकाधीन शक्तियों के साथ व्याख्या करनी है और इसलिए एक मंजूरी केवल एक ठोस वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के आधार पर जारी की जानी चाहिए और अन्यथा नहीं।

53. अधिनियम, 1990 की धारा 7 में 'नहीं' और 'करेगा' जैसे शब्दों का प्रयोग अभियोजन, मुकदमा या कानूनी कार्यवाही की संस्थिति से पहले केंद्र सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करने की अनिवार्य आवश्यकता को दर्शाता है। धारा 197(2) सीआरपीसी और अधिनियम 1990 की धारा 7 का संयुक्त रूप से पठन से यह स्पष्ट है कि पूर्व स्वीकृति उपरोक्त कानूनी कार्यवाही में से किसी के भी संस्थिति से पहले एक पूर्ववर्ती शर्त है।

54. इसमें शामिल मुद्दे की जटिलता को समझने के लिए, पूर्व मंजूरी की आवश्यकता वाले विभिन्न कानूनों के प्रासंगिक प्रावधानों की तुलना करना उपयोगी होगा।

<p><u>आपराधिक प्रक्रिया संहिता,1973</u></p> <p>197. न्यायधीशों और लोक सेवकों का अभियोजन :-</p> <p>(1). जब कोई व्यक्ति जो एक न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट या एक लोक सेवक है या था जिसे सरकार की अनुमति के बिना उसके कार्यालय से हटाया नहीं जा सकता है, अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कोई कार्य करने या कथित रूप से करते हुए उसके द्वारा कारित कथित किसी अपराध का अपराधी है तो पूर्व अनुमति के बिना कोई न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान नहीं लेगा।</p> <p>.....</p> <p>.....</p>	<p><u>भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988</u></p> <p>19.अभियोजन के लिए पूर्व स्वीकृति आवश्यक:-</p> <p>(1). लोक सेवक द्वारा धारा 7,10,11,13 और 15 के तहत दंडनीय कथित कारित अपराध का संज्ञान न्यायालय पूर्व अनुमति के बिना नहीं लेगा।</p> <p>(ए) उस व्यक्ति के मामले में जो संघ के कार्य के सम्बन्ध में नियोजित है और अपने कार्यालय से केंद्र सरकार या उस सरकार की अनुमति के बिना हटाया नहीं जा सकता है।</p> <p>.....</p> <p>.....</p>	<p><u>सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां)अधिनियम, 1990</u></p> <p>7.अधिनियम के तहत कार्य करने वाले व्यक्तियों की सुरक्षा:-</p> <p>इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग करने में किसी व्यक्ति द्वारा किये गये या कथित रूप से किये गये कार्य के विरुद्ध केंद्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना कोई अभियोजन,वाद या अन्य विधिक कार्यवाही संस्थित नहीं होगी।</p> <p>.....</p> <p>.....</p>
--	--	---

इस प्रकार, उपरोक्त तुलनात्मक चार्ट से यह स्पष्ट है कि सीआरपीसी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के तहत, यह अदालत है जिसे सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति बिना संज्ञान लेने के लिए प्रतिबंधित किया गया है। अधिनियम 1990 के तहत अनुसंधान एजेंसी/ शिकायतकर्ता /पीड़ित व्यक्ति को आपराधिक कार्यवाही; मुकदमा या अन्य कानूनी कार्यवाही शुरू करने के लिए रोका जाता है । इस प्रकार, अधिनियम 1990 के तहत सांविधिक उपबंधों में एक उल्लेखनीय अंतर है, जो बहुत व्यापक महत्व के हैं और सख्ती से लागू करने की आवश्यकता है।

55. इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मंजूरी के मुद्दे पर कानून को इस आशय का संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि लोक सेवक की सुरक्षा के लिए मंजूरी का प्रश्न सर्वोपरि है, ऐसा सेवक जिसने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए सद्भावना से कार्य किया हो। किसी बेईमान व्यक्ति की शिकायत पर लोक सेवक को अनावश्यक रूप से परेशान न किया जाए, इसके लिए कार्यकारी प्राधिकारी की ओर से उसकी रक्षा करना अनिवार्य है। हालांकि, अधिनियम की शिकायत की और लोक सेवक की शक्तियां और कर्तव्य के बीच एक स्पष्ट संबंध होना चाहिए। जिस कार्य की शिकायत की गई है, वह आधिकारिक कर्तव्य के पालन में की गई कार्रवाई के विवरण में आ सकता है। इसलिए, यदि लोक सेवक के कथित कार्य या चूक का उचित संबंध अंतर-संबंध या उसके कर्तव्य के निर्वहन के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है दिखाया जा सकता है। इस प्रकार, उपरोक्त तुलनात्मक चार्ट से यह स्पष्ट है कि सीआरपीसी और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के तहत, यह अदालत है जिसे सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति बिना संज्ञान लेने के लिए प्रतिबंधित किया गया है। अधिनियम 1990 के तहत अनुसंधान एजेंसी/शिकायतकर्ता /पीड़ित व्यक्ति को आपराधिक कार्यवाही; मुकदमा या अन्य कानूनी कार्यवाही शुरू करने के लिए रोका जाता है। इस प्रकार, अधिनियम 1990 के तहत सांविधिक उपबंधों में एक उल्लेखनीय अंतर है, जो बहुत व्यापक महत्व के हैं और सख्ती से लागू करने की आवश्यकता है। इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मंजूरी के मुद्दे पर कानून को इस आशय का संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि लोक सेवक की सुरक्षा के लिए मंजूरी का प्रश्न सर्वोपरि है, ऐसा सेवक जिसने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए सद्भावना से कार्य किया हो। किसी बेईमान व्यक्ति की शिकायत पर लोक सेवक को अनावश्यक रूप से परेशान न किया जाए, इसके लिए कार्यकारी प्राधिकारी की ओर से उसकी रक्षा करना अनिवार्य है। हालांकि, अधिनियम की शिकायत की और लोक सेवक की शक्तियां और कर्तव्य के बीच एक स्पष्ट संबंध होना चाहिए। जिस कार्य की शिकायत की गई है, वह आधिकारिक कर्तव्य के पालन में की गई कार्रवाई के विवरण में आ सकता है। इसलिए, यदि लोक सेवक के कथित कार्य या चूक का उचित संबंध अंतर-संबंध या उसके कर्तव्य के निर्वहन के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है दिखाया जा सकता है, वह मंजूरी के संरक्षण का हकदार हो जाता है। अगर

कानून को मंजूरी की आवश्यकता होती है, और अदा लत बिना मंजूरी के एक लोक सेवक के खिलाफ कार्रवाई करती है, लोक सेवक को क्षेत्राधिकार का मुद्दा उठाने का अधिकार है क्योंकि मंजूरी के अभाव में पूरी कार्रवाई शुरू से ही शून्य हो सकता है। मुकदमे के दौरान भी स्वीकृति प्राप्त की जा सकती है, जो कि एक व्यक्तिगत मामला के तथ्यों पर निर्भर करती है और विशेष रूप से कार्यवाही के किस चरण में, मंजूरी की आवश्यकता सामने आई है। प्रश्न यह है कि क्या जिस कार्य की शिकायत की गई है, वह कर्तव्य के निष्पादन में किया जाता है या कर्तव्य के कथित अनुपालन में, सक्षम प्राधिकारी द्वारा निर्धारित किया जाना है, न कि न्यायालय द्वारा। विधायिका द्वारा वैधानिक प्राधिकरण को मंजूरी देने या उसे रोकने के लिए "पूर्ण शक्ति" प्रदान की गई है और इस विषय में न्यायालय की कोई भूमिका नहीं है। ऐसी स्थिति में न्यायालय सक्षम वैधानिक प्राधिकारी की मंजूरी के बिना आगे नहीं बढ़ेगा।

56. वर्तमान मामला इस न्यायालय के निर्णयों *माताजोग डोबे* (सुप्रा) और *शंकरन मोइत्रा* (सुप्रा) के अनुपात द्वारा पूरी तरह से कवर किया गया है। । इस प्रकार, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में केंद्र सरकार की मंजूरी की आवश्यकता है और संबंधित न्यायालय के पास संज्ञान लेने का अधिकार क्षेत्र नहीं है जब तक कि केंद्र सरकार द्वारा मंजूरी नहीं दी जाती है।

57. सीजेएम कोर्ट ने सेना के उच्च अधिकारियों को यह चुनने का विकल्प दिया कि क्या मुकदमा का विचारण कोर्ट मार्शल द्वारा किया जाए-

या आपराधिक न्यायालय द्वारा' जैसा कि सेना अधिनियम की धारा 125 के तहत अपेच्छित है। श्री पी.पी. मल्होत्रा, विद्वान एएसजी ने अदालत के समक्ष सेना के अधिकारियों की मूल फाइल प्रस्तुत की है, फाइल नोटिंग से उनके निर्णय का पता चलता है कि यदि इस न्यायालय द्वारा यह निर्णय लिया जाता है कि मंजूरी की आवश्यकता है और केंद्र सरकार मंजूरी देती है, उस स्तर पर विकल्प का लाभ उठाया जाएगा।

58. सैन्य प्राधिकरण इस मामले से निपटने वाली आपराधिक अदालत से पूछ सकता है कि सेना अधिनियम की धारा 125 के प्रावधानों के मददेनजर आरोपी पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा।

तथापि, सेना अधिनियम की धारा 126 के उपबंधों के आलोक में प्राधिकरण द्वारा दिया गया विकल्प अंतिम नहीं है। आपराधिक न्यायालय जिसके पास अपराधी के विचारण का सक्षम अधिकार क्षेत्र है सैन्य अधिकारी से अपराधी को संबंधित मजिस्ट्रेट को सौंपने

की अपेक्षा कर सकता है ताकि कानून के अनुसार कार्यवाही की जा सके या केंद्र सरकार के निर्देश लंबित होने तक कार्यवाही स्थगित कर दी जाए, यदि उस आपराधिक न्यायालय की राय है कि कार्यवाही उस अपराध के संबंध में अपने समक्ष संस्थित की जाये। इस प्रकार, यदि आपराधिक अदालत ऐसा अनुरोध करती है, तो सैन्य अधिकारी को या तो इसका पालन करना होगा या केंद्र सरकार को संदर्भित करना होगा, जिसके आदेश मुकदमे के विचारण के स्थान के संबंध में अंतिम होंगे। इसलिए, सेना अधिकारी द्वारा प्रयोग किए गए विवेक केंद्र सरकार के नियंत्रण के अधीन है। इस तरह के मामले को जम्मू-कश्मीर आपराधिक अदालतों और कोर्ट-मार्शल (क्षेत्राधिकार का समायोजन) नियम, 1983 के प्रावधानों के साथ पठित सीआरपीसी की धारा 475 के प्रावधानों द्वारा नियंत्रित किया जा रहा है। उक्त नियम, 1983 के नियम 6 में यह प्रावधान है कि यदि डी

आरोपी को कोर्ट-मार्शल द्वारा मुकदमा चलाने के लिए सेना के अधिकारियों को सौंप दिया गया है, आपराधिक अदालत की कार्यवाही पर रोक रहेगी। उसके नियम 7 में आगे प्रावधान है कि जब एक आरोपी को आपराधिक अदालत द्वारा सेना के अधिकारियों को सौंप दिया गया है, संबंधित प्राधिकारी को सूचित करना होगा आपराधिक अदालत में क्या अभियुक्त पर कोर्ट-मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया गया है या अन्य प्रभावी कार्यवाही की गई है या उसके खिलाफ कार्रवाई करने का आदेश दिया गया है। यदि मजिस्ट्रेट को सूचित किया जाता है कि आरोपी पर मुकदमा नहीं चलाया गया है या अन्य प्रभावी कार्यवाही नहीं की गई है, तो मजिस्ट्रेट राज्य सरकार के समक्ष परिस्थितियां रिपोर्ट करेगा जो केन्द्र सरकार के परामर्श से यह सुनिश्चित करने के लिए उचित कदम उठा सकती हैं कि अभियुक्त व्यक्ति के साथ कानून के अनुसार कार्रवाई की जाए।

59. इस न्यायालय की संविधान पीठ ने, *सोम दत्त दत्ता बनाम भारत संघ और अन्य* एआईआर 1969 एससी 414 में कहा कि आरोपी पर आपराधिक अदालत द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता है या कोर्ट मार्शल किया जा सकता है, जब पुलिस अनुसंधान पूरी कर लेती है और आरोप पत्र प्रस्तुत कर देती है। इसलिए, ऐसा विकल्प बनाने के लिए, आपराधिक न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान लेने या आरोप विरचित करने जिससे विचारण शुरू होता है तक सेना के अधिकारियों को इंतजार नहीं करना है।

60. दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान, नई दिल्ली बनाम लेफ्टिनेंट कर्नल एसके लोरेया, एआईआर 1972 एससी 2548 में इस न्यायालय द्वारा इसी तरह का विचार दोहराया गया है कि प्रासंगिक नियम के लिए आवश्यक है कि एक विकल्प दिया जाए कि क्या अभियुक्त का विचारण कोर्ट-मार्शल या साधारण आपराधिक न्यायालय द्वारा होगा। मजिस्ट्रेट को कमांडिंग ऑफिसर को नोटिस देना होता है और उसे नोटिस प्राप्ति से 7 दिनों की समाप्ति तक दोषसिद्धि या बरी करने या आरोप विरचित करने या अभियुक्तकी सुपुर्दगी

का कोई आदेश नहीं देना होता है।

61. *बलबीर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य*, (1995) 1

एससीसी 90 में, इस न्यायालय ने वायु सेना अधिनियम, 1950 के प्रावधानों से; डंड प्रक्रिया संहिता और आपराधिक न्यायालय और कोर्ट-मार्शल (क्षेत्राधिकार का समायोजन) नियम, 1952 के उपबंधों पर विचार व्यक्त किया और अपने पहले के निर्णय *राम सरूप बनाम भारत संघ और अन्य*, एआईआर 1965 एससी 247 पर भरोसा करते हुए एक ही दृष्टिकोण दोहराया, जिसमें यह माना गया है कि विभिन्न परिस्थितियां हो सकती हैं जो क्षेत्राधिकार के औचित्य को प्रभावित कर सकती हैं कि अपराधी पर मुकदमा कोर्ट-मार्शल चलाया जाए या आपराधिक अदालत द्वारा और इसलिए, यह बन जाता है अपरिहार्य कि इस तरह का चुनाव करने का विवेक सैन्य अधिकारियों पर छोड़ दिया जाए। सैन्य अधिकारी को सेना में अनुशासन का रखरखाव, त्वरित विचारण, अपराध की प्रकृति और जिन व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध किया गया है, पर विचार करते हुए निर्देशित किया जाना है।

62. इस प्रकार, इस मुद्दे पर कानून स्पष्ट है कि सेना अधिनियम की धारा 125 के तहत, अभियुक्त का विचारण कोर्ट-मार्शल द्वारा, न कि आपराधिक न्यायालय द्वारा होगा, का विकल्प चुनने का चरण आरोप पत्र दाखिल करने के बाद और संज्ञान लेने से पहले या आरोप तय करने से पहले है।

63. अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा आगे एक प्रश्न उठाया गया है कि अधिनियम 1990 एक विशेष अधिनियम है और उसकी धारा 7, किसी भी प्रकार के मुकदमे, अभियोजन और कानूनी कार्यवाही के लिए सशस्त्र अधिनियम के तहत आने वाले व्यक्तियों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करती है जब तक कि केन्द्र सरकार की स्वीकृति प्राप्त नहीं हो जाती है। इस प्रकार, ऐसी तथ्य-स्थिति में, भले ही कमांडिंग ऑफिसर अपने विवेक का प्रयोग करता है और यह विकल्प चुनता है कि अभियुक्त पर कोर्ट-मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा, कोर्ट-मार्शल की कार्यवाही नहीं हो सकती है जब तक केंद्र सरकार द्वारा मंजूरी नहीं दी जाती है।

64. सीबीआई के विद्वान अधिवक्ता और मध्यक्षेपकर्ताओं ने दलील का विरोध करते हुए कहा है कि यदि अभियुक्तों पर कोर्ट मार्शल द्वारा विचारण किया जाता है तो मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। अधिनियम 1990 के प्रावधान सेना अधिनियम 1990 के अनुरूप लागू होंगे। अधिनियम की धारा 7 में गैर-बाध्यकारी खंड शामिल नहीं है। इसलिए, एक बार जब यह विकल्प बन जाता है कि अभियुक्त पर कोर्ट मार्शल द्वारा विचारण चलाया जाना है, तो आगे की कार्यवाही सेना अधिनियम की धारा 70 के उपबंधों के अनुसार होगी और इस

प्रयोजन के लिए केन्द्र सरकार की मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। कोर्ट-मार्शल को सेना अधिनियम की धारा 3 (VII) के तहत परिभाषित किया गया है जो निश्चित रूप से मुकदमे और अभियोजन से अलग है जैसा कि यहां ऊपर बताया गया है, और अधिनियम 1990 में संदर्भित नहीं किया गया है।

65.. निस्संदेह, कोर्ट-मार्शल की कार्यवाही आपराधिक अभियोजन के समान है और इस तथ्य को इस न्यायालय द्वारा विस्तार से निपटाया गया है *भारत संघ और अन्य/ बनाम मेजर ए. हुसैन*, एआईआर 1998 एससी 577 में। हालांकि, एक बार जब मामला कोर्ट-मार्शल करने के लिए सेना को स्थानांतरित कर दिया जाता है, तो कोर्ट-मार्शल को सेना अधिनियम के प्रावधानों के समान होना चाहिए। सेना अधिनियम में केन्द्र सरकार की स्वीकृति का प्रावधान नहीं है। इस प्रकार, हमें अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए तर्क में कोई बल नहीं मिलता है और इसे खारिज कर दिया जाता है।

66. संक्षेप में:

- (1) प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों और नियमों के संयुक्त पठन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम 1990 की धारा 7 में निहित "संस्थिति" शब्द का अर्थ अपराध का संज्ञान लेना है न कि केवल अनुसंधान एजेंसी द्वारा आरोप पत्र की प्रस्तुति
- (2) सक्षम सेना प्राधिकारी को यह चुनने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करना होगा कि क्या विचारण कोर्ट-मार्शल या आपराधिक अदालत द्वारा किया जायेगा, आरोप पत्र दाखिल करने के बाद और न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान लेने के बाद नहीं।
- (3) इस मामले के तथ्यों में आपराधिक अभियोजन/विचारण चलाने के लिए केन्द्र सरकार की मंजूरी की आवश्यकता है।
- (4) यदि कोर्ट मार्शल द्वारा अभियुक्त का विचारण चलाने का विकल्प बनाया जाता है, तो केन्द्र सरकार की मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।

67. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित निर्देशों के साथ अपीलों का निपटारा किया जाता है,:

- (i) सेना में सक्षम प्राधिकारी आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर निर्णय लेगा कि क्या विचारण आपराधिक

अदालत द्वारा किया जाएगा या कोर्ट-मार्शल द्वारा और उसके बाद तुरंत सम्बंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को इसके बारे में सूचित करेगा।

(ii) यदि वाद का विचारण कोर्ट मार्शल द्वारा करने का विकल्प बनाया जाता है तो उक्त कार्यवाही तत्काल शुरू किया जाएगा और कानून के अनुसार सख्त से शीघ्र निस्तारित किया जायेगा।

(iii) यदि विकल्प बनाया जाता है कि अभियुक्त का विचारण आपराधिक न्यायालय द्वारा होगा, ऐसे विकल्प की प्राप्ति के समय से चार सप्ताह के भीतर केंद्र सरकार को मंजूरी देने के लिए सीबीआई एक आवेदन देगा, यदि ऐसा एक आवेदन दायर किया जाता है तो ऐसे आवेदन की प्राप्ति की तिथि से तीन महीने के भीतर केंद्र सरकार उक्त आवेदन पर अंतिम निर्णय लेगी ।

(iv) यदि केंद्र सरकार द्वारा मंजूरी दी जाती है, आपराधिक न्यायालय-विचारण आगे बढ़ाएगा और उसे शीघ्रता से निस्तारित करेगा।

डी.जी
गया।

अपीलों का निपटारा किया

यह अनुवाद शिव बचन यादव , पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।